# भूमिका

इस राम की पुष्पवाटिका ( संसार ) में सभी जीव विहार करते हैं, पर उनमें जो राम के उपासक हैं, उनका मन भ्रमर होकर राम के अद्भुत कौतुकों के पुष्पों के ऊपर अहर्निश रमण किया करता है, और जब उसके आनन्द रस में मग्न होजाता है, तब अपने आपको भूल जाता है, न उस आनन्द की समाप्ति कभी होती है, और न वह उससे मुँह मोड़ता है, उसी में लय होकर आवागमन से रहित होजाता है; जिस किसी को इस रस की तृषा हो, वह इस ग्रंथरूपी रामवाटिका में प्रवेश करके चारों तरफ प्रसन्नचित्त होता हुआ फिरे ( चित्त लगाकर इस पुस्तक को पढ़े ) राम की कृपा से उसकी कामना की पूर्णता अवश्य होगी, यद्यपि यह वाटिका देखने में अविलक्षु है, और एक क्षुद्र माली की रची हुई है, पर रामनामाङ्कित होने से अभीष्ट फल के देने में अमोघ है, इसमें धर्म के विचित्र फल लगे हैं, जिस फल की जिसको इच्छा होगी, उसको वही फल मिलैगा।

मैं इस अपनी वाटिका को अपने प्यारे राम को अर्पण करता हूं यह प्रार्थना करता हुआ कि हे राम! तुम मेरे शुद्ध हृदय में अपनी बाल अवस्था की मूर्ति को धारण करके बसते रहो ताकि मैं अपने अभ्यन्तरी चक्षु करके तुम्हारे चन्द्रमुख को चन्द्र निशा विषे ( हृदय में ) चकोरवत् टकटकी लगाये हुये देखता रहूं ॥

जालिमसिंह.

# रामदर्पण।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ॐ ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि॥

हे कलम! संभलजा, अचेत से सचेत होजा, जड़से चेतन होकर अपने पुरुषत्व को दिखा, जो मुख्य प्राण प्राचीनकाल में सामवेदीय उद्गीथ का गान किया करता था आज वही मुख्य प्राण एक बड़े मर्यादापुरुषोत्तम पुरुष के अलौकिक, अनुपमेय, अप्राकृत चरित्रों का गान करनेवाला है.

तू उस दिव्य सुहावने निकलनेवाले अप्रकट गीत को पत्र पर प्रकट कर, ताकि उसको श्रवण करके मुमुक्षुजन इस अपार असार संसारको अजाखुरवत् तरजावें, हे कलम! जैसे तू एक मुखवाला है वैसेही यह मुख्य प्राणभी एक मुखवाला है. जैसे तू ईश्वर के कीर्तन और भक्ति के गान करने में मुख को खोले रखता है वैसे ही यह मुख्य प्राण भी उसी शुद्ध पवित्र आनन्द के देनेवाले कार्य के निमित्त अपने मुख को खोले रखता है. और इसी कारण तेरे और इसमें सादृश्यता है. हे मषीपात्र! यदि कलम ब्रह्मा है तो तू सावित्री है, मनुष्य के गुप्त सृष्टि के प्रकट करने में तुम दोनों की सहायता की आवश्यकता है. इस लिये तुझसे भी प्रार्थना है

कि आज तू अपनी कीर्ति अपने पति के साथ ऐसी दिखा कि यावत् यह संसार स्थित रहे तावत् यह मेरा लेख विद्वानों के मध्य प्रशंसनीय रहे.

आज नवमी तिथि, मंगलवार, चैत्र मास, वसंतऋतु है, उषःकाल में जो अवधवासी सरयू में स्नान करते हैं, वह इधर उधर देखकर चकित होते हैं, और सोचते हैं कि क्या कारण है कि चारों तरफ से शीतल, मंद, सुगंध समीर चली आरही है, नदी का जल ऊपर को उछलरहा है, तारागण विशेष प्रकाश के साथ चमक रहे हैं, शुक्लपक्ष की अष्टमी के उपरान्त भी चन्द्रमा अयोध्या के ऊपर प्रकाश कररहा है, पर सरयू के पल्लीपार अँधियारी छारही है, ऐसा मालूम होता है कि मानो काले फणि ने अपने मुख से अपने मणि को निकाल कर अयोध्या के ऊपर रखकर आप सरयू के पल्लीपार दूर से उसके प्रकाश को देखरहा है. जो लोग घर से सरयू की ओर या सरयू के तरफ से घर को जाते हैं वे बड़े आश्चर्य को प्राप्त होते हैं, यह देखकर कि कलियां वृक्षों में निकल रही हैं, पत्तियां हरी भरी प्रसन्न ऐसी दीखती हैं जैसी शरदृऋतु में पानी के पड़जाने से वे विमल मनोहरणीय दिखलाई देती हैं. सूर्य के उदय होजाने पर भी आज तारागण झलक रहे हैं, आदित्य के प्रकाश में शान्ति वर्ष रही है, तेजी और तपन भाग गई है. जीवमात्र में आह्लाद उठा चला आरहा है, मंदिरों में मूर्तियां ऐसी प्रिय लगती हैं कि मानो वे हँसनेही पर हैं, स्त्री पुरुषों में वह सुन्दरता टपक रही है कि एक दूसरेको देखकर विस्मित होजाते हैं, पर कुछ कह नहीं सक्ते हैं कि क्यों आज उनकी यह दशा होरही है. सारी प्रकृति भर में हलचल मचगया है. ऊपर दृष्टि डालिये तो मालूम होता है कि चारों दिशाओं से बहुरंगी पक्षी पंक्ति बांधे हुये नीचे से ऊपर को

अयोध्या की ओर किसीके दर्शनार्थ चले आरहे हैं। दिशाओं की तरफ़ देखिये तो जीवजन्तु सभी अयोध्या की ओर नेत्र की टकटकी लगाये बड़े आह्लाद के साथ किसीकी प्रतीक्षा कररहे हैं, मध्याह्न का समय आतेही तोपों की सलामी होने लगी, मंदिरों में से घंटे और शंखादिकों के शब्द आकाश तक गूंज गये, घन घमंड उठ आया, फूलों की कलियां खिल उठीं, फल निकल आये, वायु में ठंढक और सुगंधी आगई, पुलियां हँस पड़ीं, जीव जंतु कीड़े मकोड़े अपने स्वरों से गाने लगे, चारों ओर यह बात फैल गई कि राजा दशरथ के चार पुत्र उत्पन्न हुये फिर क्या कहना है, बाल, वृद्ध, कुमार, स्त्री पुरुष सभी राजद्वार की तरफ़ चल पड़े, और शीघ्र पहुँच गये, जय जय का शब्द होने लगा, अनेक प्रकार के ध्वजा, पताका, पुष्प, बेल और पत्रों के बंदनवार सब द्वारों पर और नगर भर में आगये, देवगण सबके सब आकाश से राजमंदिर के ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे, नारद का बीन, शिव का डमरू, इन्द्र का नगारा, विष्णु का शंख, सनकादिक सनत्कुमारों का मृदंग, गंधर्वों का ढोल, यक्षों की दुन्दुभी एक साथही बज उठी, नीचे महीसुर भी उनके साथ ही साथ वेदमंत्रों का उच्चारण विधिपूर्वक करने लगे, जब राजा दशरथ के श्रोत्रेन्द्रिय में पुत्र के उत्पन्न होने का सुशब्द पड़ा, वह बड़े आनन्द को प्राप्त हुये, बालक के देखने का प्रेम उनके हृदय में उपजा शरीर पुलकायमान होगया, गुरु वशिष्ठ के चरणकमल में गिरपड़े, और अपनी इच्छा को प्रकट किया, ऋषि महाराज ने कहा अन्दर चलो, नान्दीमुख श्राद्ध को करो, जिस समय नान्दीमुख श्राद्ध और जातकर्म करने के पीछे कौशल्या रानी ने बालक को राजा के गोद में दिया, वह प्रिय पुत्र के अलौकिक सुख को देखकर जिस पर कोटिन कामदेव की छबि छाई थी,

मूकवत् खड़े रहगये, क्या होरहा है, कहां है और कौन है इसका ज्ञान न रहा, सब इन्द्रियां कार्यरहित होगईं, केवल नेत्र की टकटकी प्रियपुत्र के मुखचंद्रपर चकोरवत् लगी है, उनके आनन्द का हाल न शारदा देवी और न शेषनागजी कहसके हैं.

जब बालक ने देखा कि पिता मेरे में लीन होने पर हैं, झट से रुदन शब्द करदिया, उस रुदन शब्द ने राजा के मन को जो अमृत के सागर में डूब गया था तुरन्त निकाल लिया, क्योंकि पुत्र दुख कितना ही कम हो पिता के शरीर और इन्द्रिय को कम्पायमान करदेता है. जब राजा सचेत हुये तब गुरु महाराज ने और तीनों बालकों को भी दिखाकर और सब संस्कार करा कर उनको बाहर लाये.

जब सभा में राजा बैठे, थोड़ी देर तक पुत्र के मुख के ध्यान में मग्न रहे, फिर एकाएक उन्मत्त की तरह बोल उठे कि हे मेरे राजमंत्रियो ! इस उत्सव में लक्ष्मीकोष की रक्षा न कीजाय, लोगों से कहदेव कि बिना किसी रोक टोक के सब धन को लूट लें, और जो जिसकी इच्छा हो उसको बिना पूछे लेजायँ, राजमंत्रियों ने राजा की आज्ञा को चारों तरफ़ विदित करदिया. थोड़ी देर के पीछे वशिष्ठ महाराज आये और कहा हे राजन् ! आज आपके धन की ओर किसी के चित्त की वृत्ति नहीं जाती है, कारण यह है कि सबके काम की निवृत्ति है, और सबको तृप्ति है, केवल उत्पन्न हुये चन्द्रमुख पुत्रों के दर्शन करने की इच्छा सबको होरही है, और उस अपने गृह से निकलनेवाले चन्द्र की तरफ़ चकोरवत् सबकी दृष्टि लगी है.

हे राजन् ! जो आपने कहा कि इन बालकों का नाम अपने इच्छानुसार रखिये सो सुनिये, जिसका शरीर आकाशवत् नील वर्ण है, जिसके नेत्र श्वेत कमलवत् प्रिय लगते हैं, जिसके मुख

पर कोटिन कामदेव की सुन्दरता छा रही है, जिसका ओष्ठ बिम्बवत् प्रिय दीख रहा है, जिसके चिबुक पर छिपा हुआ मदन-सदन किये हुये प्रेम के पुष्प तीर को चलाने पर उद्यत है, जिसकी भौंहें धनुषाकार हो रही हैं, जिसके नेत्र के तारों से ज्ञान का प्रकाश दो धारों में निकल रहा है, जिसके नील कमल कपोलों पर मकरंद रस छा रहा है जिसके स्वाद लेने को सब का मन भँवर होकर दौड़ रहा है उसका नाम राम है, यह स्थावर जङ्गम सबमें रमण कररहा है, यही सब का आधार है, और सब ब्रह्माण्ड इसका आधेय है, इसी पुरुष का ध्यान शिव ब्रह्मादिक देवता किया करते हैं. हे राजन्! जो अन्तर्यामी परमात्मा है, वही यह आज आपका पुत्र हुआ है, ऐसा मेरी समझमें आता है. आपके जो और पुत्र हैं, उनमें से दूसरे का नाम भरत है, यह विश्वम्भर को पोषण करनेवाला है, ज्येष्ठ भ्राता का बड़ा भक्त होगा, विना इसके राम और विना राम के यह न रहसकेंगे. तीसरे का नाम शत्रुघ्न है, यह सदा अपने भ्राता भरत को सुख देनेवाला है, और उसके साथ रहा करेगा, और चौथे का नाम लक्ष्मण है, यह सदा अपने लक्ष्य राममें रमण किया करेगा, यह संसार से वैराग्य और अपने ज्येष्ठ भ्राता राम से राग (प्रेम) रक्खैगा, यह रामका साथ पलमात्रको भी नहीं त्यागेगा, यदि राम ज्ञानस्वरूप हैं तो लक्ष्मण वैराग्यस्वरूप हैं, यदि भरत भक्तिस्वरूप हैं तो शत्रुघ्न योगस्वरूप हैं.

हे राजन्! अन्तर्यामी परमात्मा ने दुष्ट दलन और सज्जन-रञ्जन निमित्त आपके पुत्र की सूरत में अवतार लिया है, धन्य आप हैं, धन्य आपकी रानियां हैं, धन्य आपका वंश है, धन्य आपका देश है, और धन्य मैं हूं. इसी दिन के लिये मेरे पूर्वजों ने आप सूर्यवंशी राजाओं की निन्दित पुरोहिताई को स्वीकार

किया था; आज मेरे माता पिता के वंशवाले मेरे द्वारा प्रभु के प्रसाद करके तरगये।

ऐसा सुनते पर राजा दशरथ के दोनों नेत्रों से प्रेम का अश्रु प्रवाह ऐसी तीव्रता के साथ होने लगा कि मानो गंगा यमुना पहाड़ से निकल कर अपने स्वामी समुद्र से मिलने को चली जारही हैं, शरीर आनन्द के मारे पुलकित होगया है, मुख से वाणी नहीं निकलती है, मन ही मन में कहते हैं कि जो कुछ गुरु महाराज ने अपने मुखारविन्द से कहा है वह क्या सच है, क्या मैं जाग्रत् में हूं, या स्वप्न में हूं, क्या सचमुच सर्वशक्तिमान् परमात्मा सबके परम चेतन सच्चिदानन्द मेरे पुत्र हुये हैं, क्या ऐसा सम्भव है ? यह कहते हुये प्रेमातुर होते हुये गुरु महाराज के चरण कमल में गिरपड़े, महाराज ने उनको उठा कर छाती से लगा कर प्रबोधित किया यह कहते हुये कि हे राजन् ! जो कुछ मैंने कहा है वह सब सत्य है, आप उठें कौशल्या से पूछ लें जिसने पैदा होते ही उनका दर्शन पाया है। ऐसा सुनकर राजा उठ खड़े होगये, और कौशल्या के घर पहुँच कर कहने लगे, हे प्यारी ! तेरे नाम में सब गुण भरा है, हे कमललोचनी ! तू मुझको सदा कुशल करनेवाली रही है, तू मेरी विवेकवती रानी है, तेरी बुद्धि द्वारा आज तक मेरी कुशलता चली आई है, और भविष्य में भी चली जायगी, मुझसे गुरु महाराज ने कहा है कि प्रिय राम तेरा पुत्र साक्षात् ईश्वर का अवतार है, और उसने अपना वास्तविक चतुर्भुज रूप धारण कर तुमको दर्शन दिया है, क्या यह बात सत्य है, यह सुन कर कौशल्या आनन्द से गद्गद होकर हँस पड़ीं, और कहने लगीं कि ऐसा ही है जैसा गुरु महाराज ने कहा है, हे प्रिय ! मैं उस रूप को देखकर चकित होगई, और निम्न प्रकार स्तुति करने लगी।

मैं दुहुँ करजोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करूं अनन्ता ।
माया गुण ज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनन्ता ॥
करुणा सुख सागर सब गुण आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता ।
सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रकट भये श्रीकान्ता ॥
ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै ।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥

जब मुझको ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ तब भगवान् मुसकराये और पूर्वजन्म की कथा सुनाकर मुझको संतुष्ट किया, तब

मैं पुनि बोली सो मति डोली तजो तात यह रूपा ।
कीजे शिशु लीला अति प्रिय शीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना हुइ बालक सुर भूपा ।
यह चरित देख मैं अति हर्षानी गावन लागिउँ सुयश अनूपा ॥

हे प्यारे प्राणनाथ ! मैं आपको सदा ईश्वर समझकर आपकी सेवा करती रही, उस मेरी उपासना का फल यह हुआ कि आज वही आप ईश्वर रूप होकर मेरे पुत्र बने, और मुझको अपनी जाया बनायी है, यह सुन कर राजा कहते हैं कि हे कौशल्या ! तू पूजने योग्य है, तेरी कुशल बुद्धिमत्ता करके मैं सदा कुशल रहा किया, और ईश्वर विषे अनन्यभक्ति करके मैं जगत् पिता का पिता बना, और तू जगत् माता बनी, मैं अपने और तेरे प्रारब्ध की सराहना नहीं करसक्ता हूं, कभी कभी मैं ऋषियों द्वारा सुना करता था कि वही पत्नी श्रेष्ठ है जिस करके पति संसार के आवागमन से मुक्त होजाता है, सो आज ऐसी प्राणप्यारी तुझ पत्नी को अपने नेत्रों के सन्मुख देखरहा हूं, मुझ से अधिक तर भाग्यवान कौन होसक्ता है जिसके ग्रह विषे ईश्वर ने अवतार लिया है, इतने में राम किलकिला उठे, मुख खोल दिया, बालक की उस मूर्ति को देखकर राजा का ज्ञान भाग गया, पुत्र

स्नेह उठ खड़ा होगया; सब बालकों को देख कर आनन्द में मग्न होते हुये अपने भवन को लौट आये, नगर भर में दिनो-रात बाजे गाजे, ढोल, मृदंग, सहनाई बजा करते हैं, अबीर बुक्का कुमकुमा उड़ा करते हैं, चंद्रमुखी नारियां सोलहो प्रकार के शृंगारको कियेहुये और शिर पर कनक कलश को रक्खे हुये मंगल गीत गाती हुई राजद्वार को चली जाती हैं, और उधर से मनोगत कामना की पूर्णता से पूर्ण होती हुई गज की चाल में ऐसी चली आती हैं और दोनों मिलजाती हैं कि मानो दो समुद्र आमने सामने होकर आनन्द के मारे उछले चले जारहे हैं, द्विजातियों के घर घर दिन में हवन होरहा है, वेदमंत्रों का स्वर आकाश तक गूंज रहा है. सुगंधित धूम गुच्छे के गुच्छे ऊपर को चले जा रहे हैं, और वायु के विकार को गिराकर जीवों के हृदय को आनन्द से भर रहे हैं, सूर्य और चंद्रमा में बड़ी लाग डाट पड़गई है, सूर्य दिनमें अपने किरणों करके विद्वानों के कार्य विषे बड़ा सहायक होरहा है, चंद्रमा रात्री में अपने प्रकाश करके सबको शीतलता और शान्ति देरहा है, जैसे सूर्य के उदय होते ही पुरुषों के कमलरूपी दिल विकस उठते हैं, वैसेही चंद्रमा के निकलते ही स्त्रियों के कुमुदिनी रूपी दिल खिल उठते हैं, चन्द्रमा का पिता वरुण उसकी सहायता करहा है, और यही कारण है कि आज कल सरयू का पाट विना जलवृष्टि के भी कोसों तक फैल रहा है, उसमें अनेक प्रकार की बड़ी छोटी नौकायें सजी सजाई पड़ी रहती हैं, और सायंकाल होते ही उन सब में दीपकों का प्रकाश नीचे, और वितानों से लटके हुये काचिक वस्तुवों यानी झाड़आदिकों का प्रकाश ऊपर जगमग जगमग करते हुये एक अलौकिक दृश्य को दिखाते हैं, और वह दृश्य और भी सुहावना लगने लगता है, जब पुष्प, वेल, और पत्तियों के

चंदनवार नौकाओं के खम्भों में लगादिये जाते हैं, और सहस्रों दीपक जलते हुये सरयू महारानी के वक्षस्थल पर बहे चले जाते हैं, जो जताते हैं कि आजकल की रात्री लक्ष्मीरात्री यानी दिवाली होरही है, किसी नौका पर अप्सराओं का नृत्य होरहा है, और उनका ताल स्वर आकाश तक गूंज रहा है, किसी पर ईश्वर कीर्तन सामवेद के ललित छन्दों में होरहा है, जिसको सुनकर हृदय कमलवत् खिल उठता है, और उसमें से स्वर्गीय आनन्द का रस टपकने लगता है, किसी पर वीणा और वंशी के शब्द के साथ केदारा राग अलापित होरहा है, किसी पर चंद्रवदनी कोकिलबयनी समय समय के राग के अनुराग में उन्मत्त होती हुई ऐसी गाती हैं कि चंद्रमा से अमृत की धारा स्रवित होकर तप्त हृदय को शीतल करदेती है, और उनके मुखों को देखकर पुरुषों के नेत्र अठगुना विशेष दिव्य प्रकाशने लगते हैं, किसी पर विद्वान् भूसुर मधुर वाणी से शास्त्रार्थ कर रहे हैं, किसी पर बाजीगर अनेक प्रकार के दिल लुभानेवाले कौतुक को दिखा रहे हैं, किसी पर मणियों की चमक और रत्नों की दमक दीपकों और काचित वस्तुओं के प्रकाश करके अद्वितीय शोभा को दे रहे हैं, किसी पर अनेक नूतन पुष्पों का ढेर लगा है, जिसमें से मन्द सुगन्धि वायु निकल कर समीपस्थ नौकाओं के स्त्री पुरुषों को हर्षित किया करता है, यह दृश्य सरयूजल पर ऐसा रात्रि विषे प्रिय लगता है कि मानो दूसरी अयोध्या नगरी बसी है, दिन में तो नगर बीच ऐश्वर्यता दिखाई देती है, और रात्री के मध्य सरयू विषे वैसाही चमत्कार प्रतीत होता है, यही हाल बारसा ( नामकरण ) तक बना रहा।

आज बारसा का दिन है, प्रजा राजकुमारों का दर्शन करेगी, और उस करके अपने को कृतकृत्य समझेगी, प्रातःकाल से ही

उत्सव सामग्री इकट्ठा हो रही है, छोटे बड़े सबही मन मुदित तन प्रफुल्लित अपने अपने कार्य में लगे हैं, सबका एक लक्ष है, और वह यह है कि आज नैमित्तिक कर्म की समाप्ति निर्विघ्न हो, जिनके मकान ऊँचे हैं, उनकी अटारियों पर से स्त्री पुरुष देखते हैं कि चारों तरफ़ से मनुष्य अयोध्या की ओर ऐसे सटे हुये चले आते हैं कि मानो चारों तरफ़ से समुद्र लहराते हुये चले आरहे हैं, और उनकी शिर की रंग बिरंग की पगड़ियां अनेक प्रकार की ऐसी सुहावनी दीखती हैं कि मानो बहुरंगी पक्षी लहरों के साथ नीचे ऊँचे होते हुये चले आरहे हैं, और जो अयोध्या के अभ्यन्तर स्थित हैं वे ऐसे दीखते हैं कि मानो अनेक प्रकार के श्वेत, श्याम, रक्ताकार कमल सर विषे विकसे खड़े हैं, आज यह अयोध्या सरोवर स्वर्गीय सुख सबको दे रही है, गंधर्व, किन्नर, यक्षादिक सभी मनुष्यरूप धारण किये हुये विचर रहे हैं, सूर्य, चन्द्र और तारागण एकरूप से अपने गृह विषे स्थित हैं, और दूसरे रूप से यानी मनुष्यशरीर धारण करके अयोध्या में विराजमान हैं, अब नियत काल दो बजे का आगया, जन्मभवन मंदिर के सुवर्णमय खिड़कियों के बीच में रानियां अपने बालकों को लेकर सहेलियों सहित बैठगईं, और आये हुये मनुष्यों की अनेक टोलियां दर्शनार्थ नीचे चल पड़ीं, पहिली टोली देवताओं की मनुष्यरूप में निकली, इनके स्वरूप का कथन अकथनीय है, ये सब गाते बजाते निकले, और राम की आंख से आंख मिलते ही अश्रुधारा उनके नेत्रों से निकल पड़ीं, उनको यह सोच हुआ कि हम लोगों के हित के लिये प्रभु को मनुष्य का अवतार लेना पड़ा, उनकी यह दशा देख कर राम किलकिला उठे, और एक बड़े हर्ष को उत्पन्न करनेवाले शब्द को किया, जिसको सुनकर सब देवताओं का हृदय हृष्ट हो आया, और

शरीर रोमांचित होगया, मन ही मन में परिक्रमा किया, और मनही मन में नमस्कार करके आगे को बढ़े, क्योंकि पीछे के रेले के वेग को संभाल नहीं सके थे, उनका पैर तो आगे बढ़ता जाता है, पर मन भँवर होकर कमलकपोलों के ऊपर बैठ कर मकरंद रस को ले रहा है, वह आनन्द से तृप्त होकर अटल स्थित है. इसी प्रकार और टोलियों का भी हाल है, सब का चित्त राम के मुखचंद्र में चकोरवत् लगा है, उनके दर्शन पीछे उनका मुखचंद्र लोगों के चित्त गगन में निरालम्ब स्थित है, और अभ्यन्तरी चक्षु का विषय होरहा है.

जब कभी राम नृप की कनिया से मचल पड़ते हैं, और धूरि में लोट जाते हैं तो उनको राजा उठा लेते हैं, और तब वह अपने गभवारे बालों को नोचने लगते हैं, और उनके अम्बुज नेत्रों से जल गिरने लगता है, और जब राजा उनको अपनी छाती से लगा लेते हैं तो उस समय राम के चरण का स्पर्श जो राजा के शरीर से होजाता है, वह एक अलौकिक आनन्द उनको देने लगता है, जिसकी तुलना ब्रह्मलोकी आनन्द नहीं कर सक्ता है.

एक समय राजा दशरथ राम को चन्द्र रात्री में लिये खिला रहे थे, उनके गोद में से वह कूद पड़े, झटपट दौड़ कर कौशल्या रानी ने उनको उठा लिया, राम रोकर कहने लगे कि हे माई! ऊपर प्रकाश करनेवाले चन्द्रमा को मुझे दे, माता ने कहा अच्छा ले, देती हूं. एक चांदी के बड़े पात्र में शुद्ध जल भर दिया, चंद्रमा का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ा, उसको देख कर राम ने उसके पकड़ने के लिये हाथ उसमें डाला, प्रतिबिम्ब पर हाथ पड़ गया, चारों तरफ अंधेरा छागया, लोग घबड़ा गये, राम ने अपनी बँधी हुई मुट्ठी को जल में से निकाल कर अपने मुख में

डाल लिया, जैसे छोटे बच्चे अकसर किया करते हैं. जब मुख खुला, चन्द्रमा उसमें से भाग निकला ऊपर आकाश में जाकर अपनी जगह में बड़े आनन्द के साथ स्थित होगया, वह फूले नहीं समाता है, क्योंकि उसने राम के हाथ और मुख चुम्बन का अवसर पाया, जो लोग वहां खड़े थे, सब विस्मय को प्राप्त होगये, किसीने कहा यह राहु था जिसने चन्द्रमा को घेर लिया था, किसी ने कहा यह गंधर्व था जो लड़कों को लगजाता है, झाड़ फूंक होने लगी, राम उनके कर्तृत्व पर हँसते और किलकिलाते.

जब कभी राम अपने कमल नेत्रों से सूर्य को प्रातःकाल देखने लगते तो उसका हृदय हर्ष के मारे उछलने लगता, यह सोचकर कि मेरे वंश विषे मुझसे भी अधिकतर प्रकाशमान यह दिवाकर उत्पन्न हुआ है, क्योंकि पितर लोग यह चाहते हैं कि हमारे वंश में जितने पुत्र पौत्र उत्पन्न हों सब हमसे बढ़ करके हों, जब राम को पैंजनियां पहिरे हुये झुमुक झुमुक करते हुये इधर उधर चलते देखता है, तो सूर्य अपने रथ को खड़ा करदेता है, और उनकी प्रतिभा से भासित होता हुआ फिर आगे को चलने लगता है, धन्य वे लोग हैं जो राम के साथ भाषण करते हैं, उनके साथ साथ खेलते हैं, और खाते पीते हैं. राम सबके जीवन के आधार होरहे हैं, जो राम के प्रेम के पात्र हैं वे एक क्षण भी राम के देखे विना नहीं रहसक्के हैं. जब राम उनके नेत्रेन्द्रिय के विषय नहीं होते हैं, तो वह मन इन्द्रिय के विषय तो अवश्यही होते हैं, राम के मन में सब भाई बसते हैं, वैसेही भाइयों के हृदय में राम बसते हैं, यह अन्योन्य प्रेम अकथनीय है, राम के साथियों में से एक कहता है हे भाई! राम का जो चिबुक है वह मानो कामदेव का कुंज है, वहीं से अनंग चुपचाप बैठा हुआ प्रेम के पुष्पबाणों को इधर उधर ऐसी तीव्रता के साथ

चलाता है कि हमलोगों का मन उसका शिकार होजाता है, दूसरा कहता है कि भाइयो ! राम के नेत्र से मधु टपकता है उस रस को पीकर हम लोग मतवाले बने रहते हैं, यदि उस रस को हम एक क्षण भी न पीवें, तो हमारा शरीर नहीं रह सक्ता है, इसकी स्थिति उसी रस करके होरही है, तीसरा कहता है कि हे मित्रो! राम का नेत्र अमी है, इसी अमीरस करके हम सब जीते हैं, चौथा कहता है हे मित्रो ! राम के नेत्र में जो काली पुतली है वह हलाहल है, उसी करके हमारे अन्तःकरण विषे जितनी पहिले अशुभ वासनायें थीं सब भस्म होगईं, अब हम शान्तचित्त शिव की तरह होरहे हैं; पांचवां कहता है हे सखावो ! यह राम हमारे प्राण हैं, जैसे सब इन्द्रियों में प्राण श्रेष्ठ है, और उसीके आश्रित सब इन्द्रियां रहती हैं वैसे ही हम सब में राम श्रेष्ठ हैं, उन्हींके आश्रय हम सब जीवते हैं, उनका मुख हम कमलों के लिये रवि है, उन्हीं के प्रकाश करके हम सब प्रकाशित हैं. राम भरतादिक प्रतिदिन शरदृऋतु के चंद्रकलावत् बढ़ते आते हैं और अयोध्यावासी उनको देखकर कुमुदिनीवत् खिला करते हैं.

एक समय जब सूर्य देवता सूर्यवंशियों के सूर्य को देखते देखते अस्त होने पर थे कि इतने में राम की दृष्टि क्रीड़ास्थान के बाहर खड़े हुये शूद्रपुत्रों के मुखपर जा पड़ी, और जो कुछ उनके हृदय में फुरना फुर रही थी उसको जान गये. सब साथियों से पृथक् होकर शीघ्र उनसे जा मिले, और अनेक राम होकर हर एक के दोनों कंधों पर अपने करकमल को रख कर और नेत्र से नेत्र मिला कर मुसकराते हुये बोले, हे मेरे प्यारे मित्रो ! तुम क्यों उदास हो ? तुम मुझको भरतवत् प्रिय हो, अपनी ग्लानि को दूर करके हम लोगों के साथ खेलो, मैं तो तुम्हारे

अन्तःकरण में वास कर रहा हूं, भला बताओ क्या तुम मेरा ध्यान अभी नहीं करते थे, जब मैं तुम्हारे हृदय में तुम्हारे साथ खेल रहा हूं, और तुम मेरे साथ, तब यहां बाहर क्यों नहीं आन कर मेरे साथ खेलते हो; इस वाणी ने उन सबको आनन्द से भर दिया. उनका चेहरा खुशी के मारे कमलवत् खिल उठा, पर बोल बन्द होगया, आंसू गिरने लगा, जिसको रामचन्द्र अपने हस्तसरोरुह से पोंछते हैं, यह कहते हुये कि हे मित्र! जिन तत्वों का मेरा शरीर है उनही तत्वों का तुम्हारा शरीर भी बना है, तब फिर तुम मुझसे क्यों नहीं आलिङ्गित होते हो, प्रेम में नीच ऊंच कहां, और यदि तुम जाति करके अपने को नीच मान कर मुझसे और मेरे प्यारे भाइयों से नहीं मिलते हो, तो मुझको बड़ा शोक होता है, इस तुच्छता को दूर करो, चलो मेरे साथ खेलो, ऐसी राम की प्यारी प्यारी बातों को सुनकर उनका शरीर रोमांचित होगया, और राम के चरण पर गिर पड़े, और राम ने उनको उठाकर अपने वक्षस्थल से लगा लिया, और उनमें से दो एक का हाथ पकड़े हुये क्रीड़ास्थान के अन्दर लाकर भरतादिकों से कहने लगे हे भाई! ये सब हम लोगों को ऊंच और अपने को नीच समझ कर हम लोगों से नहीं मिलते हैं, पर इनका दिल मिलने को बहुत चाहता है. भरत लक्ष्मणादिक झटसे उठ कर उनसे मिले, और उनको देखकर और बालक भी उनसे मिले और वर्णाश्रम भेद को उड़ा कर प्रेमाश्रम के अभेद को दिखा कर सबको परितोषित किया, इसी प्रकार अनेक क्रीड़ा प्रतिदिन होती, और राम सब मित्रों को जिता कर उनको आनन्द देते, और सब स्थित हुये ज्येष्ठ श्रेष्ठ साक्षियों के प्रशंसनीय यश का पात्र बनते.

राम के नाम की धूमधाम नगर भर में होरही है, जिधर

देखो उधर राम की प्रतीक्षा होरही है, एक दूसरे से पूछता है, क्यों भाई आज राम सहित भ्राताओं के किसके घर पधारे हैं, क्या क्या कौतुक वहां किया है, इधर कब तक आवेंगे, हम उनके दर्शन के लिये उनकी वाट जुहार रहे हैं. उत्तर मिलता है हे भाई! न मालूम किसका गृह आनन्द का भागग्राही होरहा है. क्या यह अच्छा न होगा कि जब तक उनकी मूर्ति प्रत्यक्ष सामने देखने में न आवे तब तक हम सब उनके स्वरूप को अपने ध्यान में देखते रहें, और आनन्द उठाते रहें, उनका ध्यान हमारे दुःखों का नाशक है, एक पुरुष एक गली से दौड़ा चला आरहा है यह कहता हुआ कि आज प्रातःकाल अमुक पुरुष के घर राम गये थे, और उनका दर्शन पाकर एक दीर्घरोगी आरोग्यता को प्राप्त होगया, उसको बहुत द्रव्य देकर राम ने अपीड़ित करदिया, तीसरा पुरुष आकर कहता है राम की मोहिनी सूरत सबको मोहे लेती है, उनके चेहरे पर कोटिन मदन सदन करके शांति सहित विराजमान हैं, इस छवि की उपमा के अन्वेषण में कवि लोग चिंतित होरहे हैं, कोई पुरुष कहता है कि हे भाई! राम के अंग अंग में अगणित गुण भरे हैं, कोई कैसे ही अंगहीन हो वह उनको देखते ही या उनके हस्त के स्पर्शमात्र से ही अंग सहित होजाता है, हे मित्रो! स्त्री पुरुषों की कुरूपता सुन्दरता में, दरिद्रता धनाढ्यता में बदल जाती है, अशुभकर्मी शुभकर्मी बन जाते हैं, अपयशी सुयशी होजाते हैं, एक पंडित दूसरे से कहता है, हे प्यारे मित्र! क्या कारण है कि राम के आते ही त्रेतायुग सतयुग होगया है, और लोग सतयुगी दिखाई देते हैं उसको जवाब मिलता है कि हे प्रियदर्शन! वशिष्ठ महाराज ने इनका नाम राम रक्खा है क्योंकि यह थलचर, जलचर, नभचर सभी जीवों में रमण करते हैं न ऐसी कोई

वस्तु है, न देश है, और न काल है, जिसमें यह विचरण न करते हों. जब यह ऐसे स्वरूपवान्, गुणवान्, सुयशी, सुकृति, सुमार्गी हैं तो क्यों न वे जिसके अंतःकरण के अन्तर यह निरंतर वास करते हों वैसाही होकर भासें, किती किसी स्थान में बहुत पुरुष एकत्र होकर परस्पर कहते हैं कि आज जो सुख राम के जन्म लेने से राजा दशरथ को प्राप्त है वही सुख हम सबको भी प्राप्त है, क्योंकि राजकुमार प्रजा का भी पुत्र कहा जाता है, कारण यह है कि वह बड़े होने पर अपने पुरुषार्थ करके प्रजा की रक्षा पुत्रवत् करता है, और अन्त में ब्रह्मविद्या द्वारा आवागमनरूपी जो घोर नरक है, उससे तार देता है, यानी मुक्त कर देता है, हे प्यारे मित्रो! ऐसा हमारे अनुभव में आता है कि इन्हीं राम के द्वारा हम सब अवधपुरवासी अवश्य एक दिन अविनाशी पद को पावेंगे, राजधानी से राजाधिकृतों के पास से इस बात की चिट्ठी चपाती प्रतिदिन चली आती है कि रामादि राजकुमारों के जन्मदिन से चारों तरफ़ सुकाल आगया है, समय समय पर वर्षा होती है, ऋतु ऋतु के फल आते हैं, खेतों में अन्न बड़ी बाहुल्यता के साथ उत्पन्न होते हैं, क्षेत्रपाल देव उन की रक्षा भली भांति करता है, चोरी चमारी मारमार का कहीं पता नहीं. सब प्रजा पेट भर खाती है, नींद भर सोती है, और वर्णानुसार अपने श्रौत स्मार्त कर्मों में हर्षपूर्वक लगी है, आश्चर्य यह है कि भूत प्रेत तमोगुणी स्वभाववाले भी सतोगुणी होगये हैं, और अपने क्रूर हिंसक कर्म को त्याग कर दयायुत कर्म करते हैं, कभी कभी राम अपने साथियों सहित नगर के शूद्रों के घर चले जाते हैं, उनको देखकर इस वर्ण के स्त्री पुरुष बाल बचे ऐसे आनन्द को प्राप्त होजाते हैं कि मानो आज उनको एकाएक कुबेर का धन प्राप्त होगया है, दौड़ दौड़ कर उनके चरण कमल रजको

अपने मस्तक पर लगाते हैं और फिर चरणोदक लेकर पान करते हैं, और युगल हस्त से उनकी आरती करते हैं, उस काल राम की प्रिय मूर्ति को देख उनके नेत्रों से आनन्द का जल स्रवित होने लगता है, उनकी उस प्रेमयुक्त भक्ति को देखकर राम भी बड़े हर्ष को प्राप्त होवे हैं, और अपने मुख से उनकी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं; हे मित्रो! तुम लोगों के प्रेम से भरी हुई सेवा सत्कार को पाकर मुझे वह आनन्द मिल रहा है जो इन्द्रदेव को इन्द्रलोक में देवताओं की और ब्रह्मलोक में लक्ष्मीपति को लक्ष्मी की सेवा से मिलता है, तुम्हारी भोली भाली सूरत और प्रेम से सनीहुई बातें हमको बड़ी प्रिय लगती हैं, तुम्हारे में कपट स्वभाव से ही नहीं है, जहां कपट नहीं वहीं के लिये मेरा चित्त दौड़ता है, हे मित्र! तुम्ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य के पोषक हो, तुम्हारे बिना किसी का निर्वाह नहीं होसक्ता है, जैसे ब्राह्मण संसार के हित के लिये वेद पढ़ता है, क्षत्रिय रक्षा करता है, वैश्य अन्न उत्पन्न करता है. वैसे ही तुम सबको पोषण करते हो, तुम राजा को और हम सबको बड़े प्रिय हो. वे सब ऐसी बड़ाई सुनकर गद्गद वाणी से कहने लगते हैं, हे प्रभो! हम सब आपके दास हैं, यदि यह शरीर आपके कार्य में किसी दिन काम आजावे तो हम लोग अपने को कृतकृत्य मानेंगे, हम सब आपकी मोहिनी सूरत पर अपने प्राण को निछावर करते हैं, और आप से यही प्रार्थना है कि आप इसी शान्त दिव्य अलौकिक सूरत से हम लोगों के हृदयाकाश विषे सदा बसते रहैं, ताकि हम सब लोग उसको अभ्यन्तरी चक्षु से देखते रहैं, और आनन्द में मग्न होते हुये संसारी व्यवहारों को करते रहैं. यह सुनकर रामादिक प्रमुदित होते हुये लौट आते हैं, और वे सब स्वकार्य में लगजाते हैं. जब राम सहित भ्राता के धूमधाम कर

राजमहल को वापिस आते हैं तब अपने पिता के चरण में मत्था टेक कर अपने भवन को सिधारते हैं.

एक दिन राजा दशरथ को खबर मिली कि विश्वामित्र महाराज राजद्वार पर आये हैं, यह सुनतेही शीघ्र राजा दौड़कर उनको बड़ी नम्रता के साथ प्रणाम करके राजसिंहासन के महल में लेगये, और यथोचित अर्घ्यपाद्य देकर पूंछा हे भगवन्! आपकी क्या आज्ञा है, यह सेवक उसके करने को तय्यार है; यह अपने को राज्य सहित आप के चरणकमल में अर्पण करता है, उनके मस्तक पर हाथ फेर कर ऋषि ने कहा हे राजन्! मैं राज्य का भूखा नहीं हूं, आप का राज्य आप के पास रहे, आप सदा प्रजापालक व दुष्टघालक बने रहें, आपके हंसरूपी रघुवंश में कोई आज तक ऐसा नहीं हुआ है जिसने दिये हुये वचन को कभी फेरा हो, हे राजन्! आप कुछ काल के लिये, अपने पुत्र राम और लक्ष्मण को मुझे देवें, ताकि उनकी सहायता करके मैं अपने यज्ञ की पूर्णता को कर सकूं. ऐसा करने से तुम्हारा, हमारा, और उनका यानी तीनोंका कल्याण होगा, यह सुनकर और राम के वियोगका अनुभव करके राजा का तन छीन मन मलीन होगया, चेहरे पर उदासी छागई, वाणी बंद होगई, शरीर ढीला पड़गया, नेत्र डबडबा आये, चुपचाप जहां बैठे थे वहीं बैठे रहगये, और एकाएक बोल उठे.

कवित्त।

मैं ही साजि सैन चलौं साथ मुनिनाथजू के संग लैके सरयू ते सकल जुझार हैं। एकसे प्रबल महाइन्द्र लौं डरात जिन्हैं कहां ये सिरशफूलहूवे सुकुमार हैं॥ तुमही विचार देखौ "ललित" हिये में नेक हंससुत मंदर को कैसे सहैं भार हैं। मांगिये सँभार कर बार बार गहौं पद रामही कुमार मेरे प्राण के अधार हैं॥

इतना कहकर राजा तूष्णीम् होगये.

यह दशा देखकर वशिष्ठ महाराज बोले हे राजन् ! जाओ रामादिक लड़कों को लाओ, ऋषि महाराज के चरणकमल में डालो और उनके हित के लिये आशीर्वाद लो, राजा चुपचाप राम के मंदिर की ओर चले, और राम को बाहर लक्ष्मण के साथ बैठे पाये, वह उठकर पिता के चरण में साष्टांङ्ग दण्डवत् करके और हाथ जोड़कर खड़े होगये और राजा को उदास पाकर सविनय कहने लगे, हे प्रभो ! क्या कारण है कि आज मैं आपको चिन्ता से ग्रसित पाता हूं, क्या मुझ से कोई ऐसा अपराध होगया है जिस करके आपका हृदय दुःखित होरहा है, क्या मेरे प्यारे भ्रातावों ने कोई कर्म आपकी इच्छा विरुद्ध किया है, क्या मेरी मातावों ने कोई अप्रिय वचन कहाहै, क्या प्रजा को किसी शत्रु का भय पहुँचा है, क्या किसी ब्राह्मण या ऋषि का कार्य आप द्वारा सिद्ध नहीं हुआहै, यह दास आपकी आज्ञा को पूर्ण करनेको तय्यार है, यह सुनकर राम को छाती से लगाकर राजा कहते हैं, हे पुत्र ! इनमें से कोई बात नहीं है, विश्वामित्र ऋषि महाराज आये हैं, और तुमको और लक्ष्मण को अपने साथ अपने यज्ञ के रक्षार्थ ले जाना चाहते हैं, पर मैं तुम्हारे से पृथक् रह नहीं सक्ता हूं, धन जाय, धर्म जाय, राज्य जाय, सब कुछ जाय, पर हे राम ! तुमको मैं अपने से दूर क्षणमात्र के लिये भी नहीं कर सक्ता हूं, तुम मेरे जीवन के आधार हो, विना तुमको देखे मैं नहीं रहसक्ता हूं, हे पुत्र ! कहीं शरीर विना शरीरी के, पय विना घृत के, तिल विना तेल के, वस्त्र विना सूत के रह सक्ता है, खास करके ऐसे समय जब तुम्हारा चित्त खिन्न और शरीर छिन्न हो रहा है, ऐसा सुन कर राम बोले हे पिता ! क्या आप अनर्थ करना चाहते हैं, हे प्रभो ! प्रजा राजा के आश्रय होती है और राजा धर्म के आश्रय रहता है, धर्म गया सब गया, आप ऐसे अधर्म के भागी क्यों होते हैं,

आप अपने बल और साहस को देखिये, आपकी सहायता करके इन्द्र असुरों को पराजय करता रहता है, मैं आपका पुत्र हूं, मुझको कौन पराजय कर सक्ता है. मुझको किसका भय हो सक्ता है, मैं रघुवंशी हूं, काल से भी लड़नेवाला हूं, आप इस वृत्ति को कि मैं बचा हूं कभी शत्रुओं का सामना नहीं किया है, मैं डर करके रणभूमि से भाग जाऊंगा, या मुझको कोई युद्ध में हनन कर डालेगा दूर कर दीजिये, और विचार करिये कि जब एक सिंहकिशोर अनेक गजयूथों के मध्य में प्रवेश करके उनको छितर वितर कर देता है, एक सूर्य निकलते ही संसार भरके अंधकार को तिरोधान कर देता है, अग्नि का एक विस्फुलिंग सहस्रों तूल के अम्बारों को क्षणमात्र में ही छार कर डालता है, तो क्या आपका राम निशाचरों को जो ऋषियों के दुःख के कारण बन रहे हैं गर्दमर्द न कर डालेगा. क्या इस आपके पुत्र के धनुष के टंकोर को सुनकर उलूकवत् वे तेजहत होकर पृथ्वी पर न गिरपड़ेंगे, क्या मेरे भ्राता लक्ष्मण के सिंहगर्ज को सुनकर सब रजनीचर रण को छोड़ कर भाग न निकलेंगे, हे पिता ! यदि आप को डर है कि कोई मुझ को मार न डाले तो सुनिये, कौन मरता है, कौन मारता है, क्या सूर्य के प्रकाश को कोई चन्द्रहास काट सक्ता है. क्या अविनाशी को कोई नाशी बना सक्ता है, मैं सुनता हूं. कि यह जीव सदा अचल अमर है, जब यह ऐसा है तो फिर इसकी रक्षा की आवश्यकता ही क्या है, आप रघुकुल के दिवाकर हैं, जब आपके ही ऊपर अविद्या ( अंधकार ) आकर आक्रमण कर बैठे तो इतर पुरुषों की क्या गिनती है, हे प्रभो ! आप के द्वार से कोई याचक कभी विमुख नहीं गया है, क्या आप विश्वामित्र महाराज की कामना को पूर्ण न करेंगे, आप चलें और हम

दोनों को हर्षित होते हुये ऋषि महाराज की सेवा में अर्पण करें, और अपने यश और कीर्ति को बढ़ावें, राम के वचन को सुनकर राजा के हृदय का कंप दूर होगया, मुख पर प्रसन्नता आगई, ज्ञानस्वरूप राम और वैराग्यस्वरूप लक्ष्मण करके शोभायमान होते हुये ऋषि महाराज विश्वामित्र के निकट आये और दोनों पुत्रों को उनके चरणकमल में डालदिये, उन्हों ने उन को आशीर्वाद देकर अपने वक्षस्थल से लगा लिया, और फिर राम के मुखारविन्द को देख कर मन ही मन में प्रणाम करके उन के अदृश्य रूप का ध्यान किया, और आनन्दमें मग्न होकर थोड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे, जब मुनि महाराज को प्रसन्न देखा राजा ने कहा हे प्रभो ! आपकी आज्ञा को न उल्लंघन करके मैं अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करता हूं, पर राम विना मैं वैसा ही हुआ जाता हूं जैसे फणि विना मणि के, धनी विना धन के, मीन विना नीर के और शरीर विना शरीरी के होजाता है. इस पर ऋषि महाराज कहते हैं कि हे राजन् ! तुम्हारा यश और कीर्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती रहेगी, यह तुम्हारा वंश कमलवत् खिला रहेगा, और इस पर शत्रुरूपी तुषार का कभी आक्रमण न पड़ेगा, फिर राम से ऋषि महाराज हँसकर कहते हैं, हे राम ! तुम खिन्नचित्त क्यों हो रहे हो, जिस राजगृह में वशिष्ठ महाराज ऐसे ऋषि हों वहां पर अप्रसन्नता कैसे आसक्ती है, मैं इनके प्रभाव, धैर्यता, और स्थिरता को भली प्रकार जानता हूं, आज रात्रि विषे इन से अपने शंकावों को कहिये, उनकी वाणी के प्रकाश के सामने तुम्हारे अंधकार के आश्रित सन्देहों का पता न लगेगा, और कल प्रातःकाल मेरे साथ चलकर जंगल को मंगल करिये, रामचन्द्र ने उत्तर दिया हे प्रभो ! ऐसाही होगा जैसे आप कहते हैं.

जब रामचंद्र विश्वामित्र के प्रेरे हुये रात्रि विषे गुरु वशिष्ठ महाराज की सेवा में गये और अपने सन्देहों को कहा तब वह प्रसन्न चित्त से कहने लगे हे राम! तुम न आकाश हो, न वायु हो, न अग्नि हो, न जल हो, न पृथ्वी हो, और न इन के कार्य शब्द स्पर्श रूप रस गंध हो, किन्तु इन से परे इनके द्रष्टा हो, हे राम! न तुम ब्राह्मण हो, न क्षत्रिय हो, न वैश्य हो, न शूद्र हो, और न तुम वह हो जो इनमें अध्यस्त है, किन्तु तुम इन सबसे परे इनके द्रष्टा हो, हे राम! तुम न कारण शरीर हो, न सूक्ष्म शरीर हो, न स्थूल शरीर हो, और न इनके आश्रय जो व्यवहार होरहा है वह तुम हो, किन्तु तुम इन सबसे परे इनके साक्षी हो, हे राम! तुम न भूतकाल हो, न वर्तमानकाल हो, न भविष्यकाल हो, और न इनके आश्रय जो व्यवहार होरहा है, वह तुम हो, किन्तु इन सबसे परे इन सबके साक्षी हो, हे राम! न तुम द्यौलोक हो, न मध्यलोक हो, न पाताललोक हो, और न इनके आश्रय जो व्यवहार होरहा है वह तुम हो, किन्तु इन सबसे परे इनके साक्षी हो, हे राम! न तुम सूर्य हो, न चंद्रमा हो, और न तारागण हो, और न इनके आश्रय जो व्यवहार होरहा है वह तुम हो, किन्तु इन सबसे पृथक् इनके साक्षी हो, हे राम! न तुम ज्ञानेन्द्रिय हो, न कर्मेन्द्रिय हो, न प्राण हो, न अंतःकरणचतुष्टय हो, और न इनके विषय हो और इनके आश्रय जो व्यवहार होरहा है न वह तुम हो, किन्तु इन सबसे पृथक् इनके साक्षी हो, हे राम! न तुम जाग्रत् अवस्था हो, न स्वप्न अवस्था हो, और न इनके आश्रय जो व्यवहार होरहा है वह तुम हो, किन्तु इन सबसे पृथक् इन सबके साक्षी हो, हे राम! जब तुम सबसे पृथक् हो, सबके प्रेरक हो, सबके अधिष्ठान हो, सबके साक्षी हो, तो फिर तुम्हारे में शोक मोह कैसे हो सक्ता है, जब तुम्हारे में किसी का कारण नहीं है,

तो उसका कार्य कैसे होसक्ता है, हे राम! जो कुछ मन और इन्द्रिय का विषय है वह सब तुम्हारे आश्रय भासता है, वह कदापि तुम को हानि नहीं पहुँचा सक्ता है, क्या माया अपने अधिष्ठान चेतन को बिगाड़ सक्ती है, यह उसी के आश्रय नाचती कूदती है, और खेल करती है, पर उसका एक रोम भी टेढ़ा नहीं कर सक्ती है, इसलिये हे राम! जो कुछ तुम अपनेसे पृथक् देखते हो वह तुम्हारी कोई हानि नहीं करसक्ते हैं, इन सबको वैसेही अपने से गिरादो जैसे कोई अपने कपड़े को झाड़कर उसमें से धूलि को गिरा देता है, हे राम! अब बतावो तुम अपने स्वरूपज्ञान को प्राप्त हुये हो या नहीं, राम की दोनों भुजायें सिंहवत् फरक उठीं, ज्ञानेन्द्रियां दमक उठीं, कर्मेन्द्रियां उद्यत हो आईं, चेहरे पर मुसकराहट आगई, उनको देख लक्ष्मण भी वैसे ही होगये, और सारा संसार लक्ष्मण को तुच्छ तृणवत् दीखने लगा, सबसे उनको वैराग्य है केवल एक राम से राग है.

प्रातःकाल जब दोनों भाई नित्य कर्मादिक करके ऋषि विश्वामित्र जी के चरण में मत्था टेका तो उनको देखकर वह बड़े प्रसन्न हुये, और समझगये कि मेरा कार्य्य अब सिद्ध हुआ रक्खा है, राम लक्ष्मण दोनों भाइयों ने राजा दशरथ और वशिष्ठादि मुनियों के चरणों को छुआ, और उन सबों ने हर्षित होते हुये आशीर्वाद दिया, उनके चित्त की प्रसन्नता राजकुमारों के उत्साह को बढ़ा रही है, वह राजऋषि महाराज उन दोनों राजकुमारों के साथ एक दाहिने दूसरे बायें जाते हुये ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो आज वह ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न होते हुये अपने लक्ष परमात्मा के तरफ चले जारहे हैं और कभी कभी उनके पिता के राज्य की विभूति को दिखाकर कहते जाते हैं कि हे राम! देखो कैसे मृग के झुण्ड निडर चर फिर रहेहैं, कैसे छलाँगैं मार रहेहैं,

कैसे कृषक अपनी मृगनयनी के साथ आह्लाद के गीत गारहे हैं, और खेतों को सींच रहे हैं, कैसे अनेक प्रकार के अन्न तरुणता के तरंग में उमंगते हुये ऊपर को चढ़े आरहे हैं, कैसे पक्षी, स्त्री पुरुष की सूरत में, सुहावने शब्दों को करते हुये गिरे हुये अन्नों को खेतों में चुग रहेहैं, कैसे नदियों के शुद्ध निर्मल जल शान्ति के साथ बह रहे हैं, कैसे पुष्पवृक्षों के पुष्पों से भीनी भीनी सुगंधि चली आरही है, और लोगों के दिलों को आनन्दित करती है.

इतने में ताड़का राक्षसी दिखाई पड़ी, विश्वामित्र महाराज उसकी तरफ़ अंगुली उठा कर राम से कहने लगे, हे राम ! यह दुष्टा राक्षसी सबको ताड़ना करती है, यह वध करने के योग्य है, इस को तुम वध करो, राम ने मन ही मन में विचार किया कि स्त्री के ऊपर शस्त्र का प्रहार करना अयोग्य है, यह सोच कर गुरु महाराज से कहनेलगे.

## सवैया ।

जानतहौ रघुवंशिन को पथ जो मरयाद को आप सँभारत ।
दान कृपान विधानन सों सगरे जगतीतल पुंज पसारत ॥
का कहिये प्रभुसों "ललिते" मैं यही जिय बारही वार विचारत ।
भारी लगै अपलोकहु ते कहुँ वीर न तीय त्रियान पै डारत ॥

तत्पश्चात् विचार किया कि गुरु की आज्ञा को भंग करना भी अनुचित है, आननफ़ानन में धनुषाकार भौंहों को चढ़ाकर उस के मध्य में से प्रेम के वाण को लक्ष्य पर संधान कर ऐसा मारा कि उस का दुष्ट स्वभाव निमिषमात्र में कट कर गिर पड़ा, और वह दिव्य अप्सरा की सूरत में उड़ती हुई इन्द्रलोक को चल दी, यह कौतुक देखकर ऋषि महाराज अति प्रसन्न हुये, और राम से कहा हे राम ! तुमने मर्यादा स्थापित करने के लिये अवतार लिया है, चलो देखो, वह आगे मेरी कुटी दिखाई देतीहै,

ये सब बात चीत करते कराते कुटी के निकट पहुँच गये, ऋषि के शिष्यगण ने आनकर दंडप्रणाम किया, और ऋषि महाराज ने राम लक्ष्मण का आतिथ्य सत्कार किया, कंद, मूल, फल खिलाया, और तत्पश्चात् सब अस्त्र शस्त्र उनको देकर उनके विश्राम के लिये स्थान दिया, और आप भी विश्राम किया, प्रातःकाल होते ही दोनों भाइयों ने शौच स्नान नित्य कर्म करके ऋषि महाराज से कहा कि हे प्रभो ! अब आप निर्भय होकर यज्ञ करिये, हम आपके मख की खबरदारी भली भाँति करेंगे, आप बेखटके रहिये, यह सुनकर ऋषि महाराज सहित और मुनियों के यज्ञ करने लगे, और राम लक्ष्मण धनुष् पर बाण चढ़ाये हुये नरसिंहवत् चारों तरफ घूमने लगे, उनके ऊपर वीररस छा गया, दोनों भुजायें फड़कने लगीं, वक्षस्थल उमंग हो आया, नेत्र श्वेत कमल से रक्त कमल में बदल गये, धनुष् में लचलचापन और बाण में कठोरता आ गई, कमर सिंहकटिवत् पतली और पाद मृग पादवत् चंचल दीखने लगे, मालूम होता था कि आज काल कराल इन बालकों के शरीरों में उतर आया है, घूमते घूमते क्या देखते हैं कि ताड़का का पुत्र मारीच सामने मख विघ्न निमित्त खड़ा हो गया, रामचन्द्र ने उसको छली जाना, क्योंकि उसका संबंध मरीचि से पाया, जिसके पड़ने से मरुस्थल विषे जल न होते हुये जल दिखाई देने लगता है, और जिसके कपट भेष में आकर पथिक अथवा मृग अपने अमूल्य जीवन को खो बैठते हैं, उसको उसके स्वामी मूलाज्ञान रावण के निकट पहुँचाने के लिये ऐसा गाँसी रहित एक तीव्र बाण मारा कि वह समुद्र के पास लंका के सम्मुख जा गिरा, और जब सुबाहु ने जो अति बलवान् अहंकारी मुनियों का द्रोही था बड़ा भारी कटक लेकर रामचन्द्र को घेर लिया, और मार मार पुकारने लगा, तब रामचन्द्र ने

कहा अरे दुष्ट निशाचर! तू रघुवंशियों के पराक्रम को नहीं जानता है, देख अभी तुझको रुंड मुंड किये देता हूं, यह कह कर राम ने उस पर अग्निवाण का प्रहार किया, उसका शिर मस्तक से कटकर भूमि पर ऐसा गिरा जैसे पका आम्रफल अवनि पर गिरता है, और तत्पश्चात् दोनों भाइयों ने रोष में आनकर वाणों की ऐसी वर्षा की कि ब्राह्मणों और मुनियों के दृष्टिगोचर यह नहीं होता था कि कब वाण तर्कस से निकालते, कब रोदे पर चढ़ावे, और कब अनुसंधान कर शत्रुओं पर छोड़ते, एक क्षण में निशाचर कटक का संहार कर दिया, उनके मृतक शरीर राम लक्ष्मण के शरों से जल कर पृथ्वी पर गिरे हुये ऐसे दीखते हैं कि मानो सहस्रों मरे हुये काक पड़े हैं, ऐसा दृश्य देख करके देव, मुनि सबही निर्भय होकर उनकी स्तुति करने लगे, जिसको सुनकर उनमें प्रसन्नता आई, क्रूरता गई, फिर वही बचपन की सरलता प्रकट भई, दोनों भाइयों ने दौड़कर विश्वामित्र महाराज के चरण को छुवा, उन्होंने छाती से उन्हें लगाया, मस्तक को सूंघा, और कहा हे राम! हम सब राजा जनक के राज में आ गये हैं, थोड़ी दूर पर उनकी राजधानी है, वहां चलकर धनुपयज्ञ को देखो, धनुपयज्ञ का नाम सुनते ही रघुकुलनाथ राम बड़े हर्ष को प्राप्त हुये, और अपने भाई लक्ष्मण के साथ चले, मार्ग में एक आश्रम बड़ा भयानक दिखाई पड़ा, वहां न खग है न मृग है और न कोई जीव जन्तु है, राम ने मुनीश से इसके ऐसा होने का कारण पूछा, उन्होंने सारी कथा आदि से अन्त तक सुनाई, और जब बताई हुई शिला पर राम ने अपना चरणकमल रख दिया, तब उसमें से एक तप की पुंज नारी प्रकट हो आई और भक्तहितकारी अवधविहारी राम को देखते ही हाथ जोड़ कर निम्नप्रकार स्तुति करने लगीः—

मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावण रिपु जन सुखदाई।
राजीव सुलोचन भवभय मोचन पाहि पाहि शरणहिं आई॥
मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन यहै लाभ शंकर जाना॥
विनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न वर मांगौं आना।
पदपद्म परागा रस अनुरागा मन मम मधुप करै पाना॥
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई शिवशीश धरी।
सोई पदपंकज जेहिं पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरी॥

जब आगे बढ़े एक जलाशय देखा, जिसके दोनों किनारे बड़े सुहावने लगे, मालूम होता था कि यह स्वर्गभूमि है, मुक्ति का सदन है, जल निर्मल है, देखने में प्रिय है, ऋषि महाराज से रामचन्द्र ने पूछा हे प्रभो! इस नदी का क्या नाम है, और कहां से आई है, ऋषि महाराज ने सारी कथा भागीरथी की सुनाई, और मुसकराते हुए कहा:—

सवैया

जबते महि मंडल आनि ठई सबही को भई कल्पद्रुम डारी।
अति पापी सुपापी बड़े लघु को नहीं दूजी भई जे भये तुवबारी॥
ललिते यह गंग की रीति सदा गति एकही सी सबको अति प्यारी।
यहि काहू की आनि बदी न करी यम ही की गदी को रदी करि डारी॥

राजकुमारों को बड़ा आनन्द मिला, उसमें जाकर स्नान किया, सारी थकावट जाती रही, चित्त हर्षित होगया, उत्साह बढ़ा, जलपान किया, स्वाद में मधुवत् मीठा लगा, सतोगुण उमंग कर आया, नदी को नमस्कार किया, और जब नौका के ऊपर चढ़ने लगे केवट ने हाथ जोड़ कर सविनय कहा:—

सवैया

यहि घाट ते थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल थाह दिखाइहौं जू।

परसे पग धूरि तरै तरनी घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ॥
तुलसी अवलंब न और कछू लरिका केहि भांति जिआइहौं जू ।
बरु मारिये मोहिं बिना पग धोए हौं नाव न नाथ चढ़ाइहौं जू ॥

हे कमललोचन ! मैं तुमको कभी अपनी नौका पर न चढ़ने दूंगा जब तक तुम्हारा चरण न धो लूंगा, न मालूम इन चरणों में क्या भरा है, कल मैंने सुना था कि आपके चरण के छू जाने से एक शिला जिसके निकट गौतम ऋषि महराज तप करते रहे, चन्द्रवदनी नारी होकर आकाश को उड़गई कहीं आज उसी पैर की रज के छू जाने से मेरी नौका जो पत्थर से अति सुकुमार है न उड़जाय, यदि कहीं ऐसा हो गया तो मैं मरा, मेरे कुटुंबी मरें, इसी नौका के द्वारा हम सबका जीवन होता है, उसकी ऐसी सरलता पर रामचन्द्र के मुखारविन्द पर मुसकुराहट आगई, और कहा कि हे केवट ! वही उपाय करो जिस करके तुम्हारी जीविका बनी रहै, और तुम्हारे कुटुम्बी सुखी रहैं, ऐसी आज्ञा पाने पर बड़े मसन्नचित्त के साथ रामचन्द्र के चरण को गंगाजलसे धोता जाता है और उनके मुखचंद्र को देखता जाता है, जब धो चुका और उस चरणामृत को पान किया, और मस्तक पर डाला, तब उसके हृदय का कपाट खुलगया, ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो आया, पहिचान गया कि यह कौन हैं, चरण छू कर और हाथ जोड़ कर सन्मुख चुपचाप खड़ा होगया और उनकी छवि को देखने लगा, जब नौका तीर पर आई उस में रामचन्द्रादिकों को बैठाल कर मस्ताना बनानेवाली लावनी में बड़े हर्ष के साथ गाता हुआ सबको उस पार करदिया जब लोग उतराई देने लगे तब वह कान पर हाथ रख कर रामचन्द्र से कहने लगा हे राम ! तुम क्या अंधेर करते हो, यदि हम लोग ऐसा ही किया करेंगे तो हम तुम दोनों बिरादरी से निकाल

दिये जायँगे, हम तुम भाई भाई हैं, आज मैंने तुम को गंगा के पार करदिया है, कल तुम मुझको वैतरणी नदी के पार करदेना, रामने हँस कर कहा तुम ठीक कहते हो, हम तुम दोनों नाविक हैं, तुम यहां के हो, हम वहां के, हमारे तुम्हारे में कोई भेद नहीं "तत्वमसि" यह कह कर उसको छाती से लगा लिया, हे पाठक जनो! देखो, भक्ति सरलता के साथ कैसी उत्तम फल देनेवाली होती है, जिस पद के पाने के लिये विद्वान् करोड़ों जन्मों तक जप तप ध्यान किया करते हैं पर नहीं पाते हैं, आज वही पद केवट को घर बैठे बिठाये प्राप्त हो गया, कारण यह है कि विद्वान् विद्या के अहंकार से भरे रहते हैं, न उनका अहंकार टूटता है न प्रभु प्राप्त होते हैं, सरलता में कपटता नहीं रहती है और तब ही परमात्मा की प्राप्ति होती है हे मित्रो! जब तक निष्कपट भक्त प्रभु के न होंगे तब तक दुःख से मुक्त भी न होंगे.

जब नौका द्वारा उस पार गये, जिधर दृष्टि डालते हैं एक अलौकिक दृश्य दिखाई देता है, कहीं पर वृक्ष फूलों से लदे हैं, उन पर मधुकर गूंज रहे हैं, और मधुरस पी रहे हैं, कहीं पर पुष्प अवनि पर पड़े हैं, और उनकी जगह पर छोटी छोटी कैरियां लगी हैं, कहीं पर हरे भरे वृक्षों पर नन्हीं नन्हीं चिड़ियां बैठी हुई चहचहा रही हैं, कहीं पर लता वृक्षों से लिपट कर प्रिया के प्रेम को दिखा रही हैं, कहीं पर लम्बे चौड़े सरोवर में कमलिनी और कुमुदिनी खिली हुई अपने हृदय की प्रसन्नता को बतला रही हैं, कहीं पर खेतों में कृषक स्त्री पुरुष प्रसन्नचित्त होते हुये, और अपने कार्य को करते हुये गीत गा रहे हैं, कहीं पोस्त के श्वेत और रक्त रंग के फूल मंद वायु के वेग करके लहर मारते हुये ऐसे प्रिय लगते हैं, जैसे कमलिनी व कुमुदिनी तालों और झीलों में लहराती हुई प्रिय लगती हैं, कहीं पर लाही सरसों फूली हुई सुवर्णमयी

हो रही हैं, कहीं पर बाग बगीचों में भूसुर हवन वेद मंत्रों को पढ़ पढ़कर कररहे हैं, कहीं पर साधुवों के कुटी के सामने कदली वन के पत्ते झूमते हुये ऐसे मालूम होते हैं कि मानों वे थकित पथिक को विश्राम निमित्त बुला रहे हैं, कहीं पर शिवमंदिर में शिव शिव का शब्द हो रहा है, कहीं पर वैकुंठनाथ के मंदिर में हरिहरि का शब्द हो रहा है, स्त्री पुरुषों का उनके अन्दर आना जाना उनकी श्रद्धा को बता रहा है, जब दोनों राजकुमार जनकपुर में प्रवेश हुये तो नगर की सुंदरता देखकर चकित हो गये, और नगरवासी इनकी सुन्दरता देखकर अवाच्य हो गये, दोनों तरफ की दशा एकसी होगई है, मन बड़ा चंचल है, इसने सबके हृदय को हिलाकर समझाया कि हे अज्ञ पुरुषो! इनकी केवल सुन्दरता ही पर न ठहर जावो, इनके कौतुकों को भी देखो, उनमें अधिक आनन्द पावोगे, ऐसी प्रेरणा से प्रेरित हो कर सब अचेत से सचेत हो गये, और झुक झुक कर युगल हस्त युक्त करके प्रणाम करने लगे, नगर में घूम फिर कर भली प्रकार देखा, चारों तरफ़ उत्साह की सामग्री पायी, हर एक मकान के द्वार पर वंदनवार पत्र पुष्प के टँगे हैं, कदली के खम्भे गड़े हैं, ऊपर ध्वजा फरफरा रही है, नीचे लोग बैठ कर परस्पर बात चीत करते हैं और कहते हैं देखो भाई! राजकन्या स्वयंवर में किस राजपुत्र को वरै है, जब दृष्टि राम के ऊपर पड़ती है, सबका दिल हर्षित होकर कहने लगता है कि यह श्याम वर्णवाला वर ईश्वर ने स्वयम् रचकर भेजा है, इसके सामने सब आगन्तुक राजा लोग फीके हैं, इसके कमललोचन हमारे प्राणों को खींचे लेते हैं, इसके मुखारविंद पर हमारा मन भ्रमर होकर रमण करने को चला जाता है, रोकने से रुकता नहीं है, यह इस समय हमारे प्राणों का आधार बन रहा है, पर परमात्मा

इसका संबंध इस नगर में ऐसा कर देवे कि कभी कभी तो इसका दर्शन हम लोगों को मिला करें, हे भाइयो! आवो ईश्वर से इस वर के लिये प्रार्थना करें, वह निष्प्रयोजन प्रार्थना को शीघ्र सुनता है, जिधर राम जाते हैं उधर ऐसा ही सबका हाल होजाता है, चंद्रवदनी स्त्रियों में से एक कहती है कि हे बहिनो! यदि सीता हमारी प्यारी कन्या है तो यह हमारा प्यारा राम जमाई है, दूसरी बोल उठती है कि मैंने अपने मन में इस कुमार और उस कुमारी का गठबंधन कर दिया है, तीसरी कहती है कि पृथ्वी चल पड़े, पहाड़ उड़ जाय, तारेगण नीचे आजायें, सूर्य पूर्व से पश्चिम में उदय हो जाय यह सब संभव है पर राम को छोड़कर जनकतनया अन्य वर को वरै यह असंभव है, यह प्रेम की अवस्था तो प्राकृत अज्ञानी स्त्री पुरुषों की है पर जो विद्वान् ज्ञानी हैं, उनको तो विश्वामित्र महाराज, राम (ज्ञानस्वरूप) और लक्ष्मण (वैराग्यस्वरूप) करके सम्पन्न श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठाचार्य्य दिखाई देते हैं, और हमारे उपदेशार्थ और कल्याणार्थ यहां आये हैं, ऐसा अनुभव करते ही उनके ज्ञानचक्षु का कपाट खुल गया, और उन्होंने अपने हृदय में इन्हीं तीनों को ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में देखा और इन्हीं के अभ्यन्तरी उपदेश करके तत्त्वमस्यादि महावाक्यों का लक्ष्य ब्रह्म अपने ही आत्मा को पाकर शान्तचित्त होते हुये आनन्दपूर्वक विचरने लगे।

राम लक्ष्मण से कहते हैं कि हे भाई! ऐसा सुहावना नगर तो हमने पहिले कभी नहीं देखा था, देखो सामने के ताल के चारों तरफ़ संगमरमर की सीढ़ियां बनी हैं, कैसी वे सुन्दर लगती हैं, कैसी कैसी रूपवती स्त्रियां अपने करकमल में कमल लिये हुये स्नान करके शिवपूजनार्थ चली जा रही हैं, कैसे रूपवान् पुरुष बड़े बड़े

स्तोत्रों को उच्च मधुर स्वरों के साथ पढ़ते हैं, देखो किनारे किनारे कैसे छोटे छोटे पुष्पों के वृक्ष पुष्पों से लदे हुये खड़े हैं, कैसे निर्झर वारि की वर्षा उन पर कर रहे हैं, कैसी कियारियां चारों ओर बहुरंगी सुगन्धित फूलों से प्रफुल्लित हो रही हैं, घूमते घूमते ये सब, देवी के मंदिर की ओर निकले, वहां सियनिवास सुख का वास, शोभा का सदन, दुःख का दमन, संगमरमर का बना हुआ दिखाई पड़ा, उसके चारों ओर बाग बगीचे लगे हैं, उनके मध्य अनेक प्रकार के विहंग विचर रहे हैं, नाना सर सुधाजल से भरे हैं, और उन जलों के पास आने के लिये मणियों की सीढ़ियां बनी हैं, उन बगीचियों में अनेक दिव्य चंद्रमुखी कन्यायें पुष्प को चुन रही हैं, उनके नेत्र से मधुर रस निकल कर रसीले पुरुषों के संतप्त हृदय को सिंचन कर रहे हैं, उनकी चाल ढाल, बात चीत, उनकी स्वामिनी की सभ्यता को सूचित कररही हैं, सिय के भवन से वंदीं आते ही विद्युत की तरह चमककर सबके सब तिरोधान होगईं, मुनिमंडली आगे को बढ़ी, थोड़ी दूर पर एक अनुपम सुन्दर शोभायमान अनोखी बगीची दीख पड़ी, विश्वामित्र महाराज को वह बड़ी प्रिय लगी, और वह कहने लगे हे राम! यहीं ठहरना चाहिये, राम ने कहा बहुत अच्छा, फिर, वहीं सब मुनिवृन्द उतर पड़े, विश्वामित्र महाराज के आने की खबर राजा जनक को मिली; वह शीघ्र अतिथि सत्कार निमित्त यथोचित सामग्री सहित, उत्तम मंत्री और श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ आये, और मस्तक पृथ्वी पर रखकर विश्वामित्रजी को और तत्पश्चात् सब ब्राह्मणों को प्रणाम किया, और अपने भाग्य की सराहना की, मुनिराज ने बड़े प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, इतने में राजा की दृष्टि राम लक्ष्मण पर पड़ी, जो उस काल घूम फिर कर आये थे, उनकी सुन्दरता, लावण्यता, और कोमलता को देखकर

चकित होगये, पुत्रस्नेह धीरे धीरे उन के हृदय में उठता आता है, अपने मन से पूछते हैं कि हे मन ! बता क्या कारण है कि इन बालकों की तरफ़ विशेष करके उसके ओर जिसका मुख नीलसरोरुह की तरह प्रिय लगरहा है, तू प्रेम के साथ दौड़ा चला जाता है, क्या यह मेरी प्राणप्यारी तनया जानकी को कल स्वयंवर में जीत सकेंगे, हे मन ! यदि मैं जानता कि कोई ऐसा श्रेष्ठ वर संसार में है तो ऐसी कठिन प्रतिज्ञा न करता, इस पर मन कहता है कि हे मेरे आत्मा ! मैं क्या उत्तर दूं, मैं तो अपने आपे में ही नहीं हूं, उसकी आकर्षणशक्ति मुझ को खींचे लिये जाती है, मैं तो मधुकर बनकर उसके नीलसरोरुह कपोलों के मकरन्द रस पीने के लिये चला जारहा हूँ, आपके सुनने और फिर उत्तर देने की शक्ति मेरे में कहां है, यह कहकर वह चल दिया, राजा अवाच्य बैठे हैं, इनकी इन्द्रियां अपने मित्रइन्द्रियों से जो श्रीरामचन्द्र के शरीर विषे हैं, जा मिलीं, वहां एक दूसरे को देखकर अति प्रसन्न हुईं, राम ने देखा कि राजा, राजकार्य, धन-दौलत, देह गेह से अलग होकर मेरे में लीन होने पर हैं, और देवताओं के कार्य्यनिमित्त अभी मुझको इनकी तनया द्वारा बहुत कौतुक करना हैं, अपने मनको प्रेरणा की, वह समाधि से जाग उठा, राजा का मनरूपी चोर जो अमृतरूपी रस को हरण कर रहा था, भाग निकला, उसके साथ ही साथ सब इन्द्रियां भी मित्रों से मिल कर अपनी २ जगह पर लौट आईं, तब जनक महाराज बोले कि हे मुने ! क्या ये दोनों बालक मुनि-कुलतिलक हैं, अथवा नृपकुलपालक हैं, हे मुनिराज ! मेरा स्वाभाविक वैराग्य मुझ से भागा जाता है, और मेरा मन चकोरवत् इन के चन्द्रमुख की तरफ़ दौड़ा जाता है, मुनिराज हँसकर कहते हैं कि हे राजन् ! ये सब जीवों के जीव हैं, सब

प्राणों के प्राण हैं, सबको प्यारे हैं, रघुकुल के मणि हैं, राजा दशरथ के पुत्र हैं.

**सवैया**

एकही बाण सों ताड़का मारि कै जाय भये मख के रखवारे ।
जारि सुबाहु को पावक बाण मरीचि को सागर पार उतारे ॥
शंकर गौतम नारि को तारि सबै मुनि के गण साथ सिधारे ।
आए तुम्हारे सुग्राम महीप येई धन जीवन प्राण हमारे ॥

यह सुनते ही राजा जनक की शुभ कामना जग उठी, पर जब धनुष की कठोरता और अपनी प्रतिज्ञा का अनुभव किया, शरीर कम्पायमान होगया, मुख सूख गया, हृदय दहल उठा, राजा मन में कहता है कि प्रिय जानकी के योग्य तो यहीं वर है, दूसरा नहीं, पर मैं अपने दिये हुये वचन को कैसे खंडन करूं, और अपयश का टीका अपने मस्तक पर लगाऊं, जब उन को कुछ न समझ पड़ा तो मन ही मन में शिव को स्मरण करते हुये कहने लगे, हे शंभो ! तू मेरी अभीष्ट कामना को पूर्ण कर, तेरे शरण को प्राप्त भया हूं, तू अपने भक्तों के क्लेशों का सदा हरने वाला है, तू काशी में बैठा हुआ अपने शरणागतों को स्वर्ग में भेजता रहता है, यदि मेरी कामना धर्मयुक्त पूर्ण न भई तो इस शरीर को अयोग्य जान कर अग्नि में दाह कर दूंगा, हे पाठक जनो ! भारतवर्ष ही एक देश है जिस में आर्य लोगों को पुत्री पुत्र से भी अधिक प्यारी होती है, जिसके कल्याणार्थ, माता, पिता, भ्राता, धन दौलत सभी को श्रेष्ठ वर पाने के लिये देने को उद्यत रहते हैं, और यदि प्राण देने से भी उन की मनोकामना पूर्ण होती हो तो उसके भी देने से नहीं हटते हैं, शिव महाराज आरत्त की प्रार्थना को शीघ्र सुनते हैं, और उस के अभीष्ट वर देने को हरदम तैयार रहते हैं, राजा के श्रोत्रेन्द्रिय

में कामना के पूर्णता की आशा की भनक पड़ी, कुछ कुछ शान्ति आई, पर दृढ़ता न हुई, फिर पूछने लगे हे मुनिराज! आप को ये कैसे प्राप्त भये, तब ऋषि महाराज ने मख की रक्षा, और असुर संग्राम की कथा सुनाई, राजा सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और मुनिराज को नगर में लेजाकर एक सुखद सुन्दर स्थान में वास दिया, और प्रणाम करके राजभवन को वापस आये. जब भोजन करके सबों ने विश्राम किया और एक पहर दिन रहगया, लक्ष्मण राम के पास बैठे हुये उनके मुखारविन्द को देख रहे थे, राम उनके हृदय की लालसा को और उसके साथ ही साथ उन के संकोच को जान कर उन की प्रसन्नता निमित्त गुरु महाराज से कहते हैं, हे प्रभो! लक्ष्मण जनकपुर को देखना चाहते हैं पर आपके डर के मारे अपनी इच्छा को प्रकट नहीं करते हैं, यदि आप का अनुशासन पाऊं तो उन को नगर दिखा कर तुरंत लौटा ले आऊं, मुनीश्वर ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा हे राम! तुम दोनों भाई नगर को देख आवो और अपने सुंदर बदन को दिखाकर लोगों के नयन को सफल करो, ऐसी आज्ञा पाने पर दोनों भाई गृह से बाहर निकल आये, लोगों ने देखा कि पीताम्बर कमर में धारण किये हैं, तरकस पीठ पर कसे हैं, ताम्बूल खाये हैं, करकमल में धनुष बाण लिये हैं, केशर का टीका सांवले गोरे मस्तकों पर ऐसी शोभा दे रहा है कि मानो नील मणि और श्वेत मणि ( वज्र ) के ऊपर कंचन का बिन्दु जड़ा है, विशाल भुजायें नागसुंड के ऐसे, और लम्बे चौड़े कंधे केहरि के ऐसे दीख रहे हैं, कंठ में गजमुक्ताओं की माला पड़ी है, कानों में मणिजटित सुवर्ण के कुंडल हिलते हुये ऐसे चमकते हैं जैसे काले धौरे बादलों में विद्युत् चमक चमक उठती है, शिर के काले घूँघराले बालों पर मुकुटमणि ऐसे प्रिय झलकते

हैं जैसे कृष्ण पक्ष की रात्रिविषे गगनमंडल में तारे प्रिय चम-
कते हैं। ऐसी मनोहर जोड़ी को नगर में प्रवेश करते हुये देख
कर बालकों के झुंड के झुंड उन के पीछे पीछे हो लिये, और
हर्षित होते हुये अपने आप देखने योग्य पदार्थों को दिखलाने
लगे, जौहरीगली में गये, मणियों के अम्बार लगे पाये, सेठों
और उन के भृत्यादिकों का चित्त जड़ मणियों से हट कर चैतन्य
मणियों के ऊपर जा पहुँचा, वहीं बिक कर दूसरों का होगया,
लौटने को भूल गया, उन का जीवात्मा अखंडानन्द को प्राप्त हो
गया, कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां सबकी सब थोड़े काल तक
अक्रिय हो गईं, पर जब मनोहारिणी जोड़ी आगे को बढ़ी, औरों
का मन भी उसके ऊपर जा पड़ा, पिछला चित्त प्रतिपक्षता के
कारण अपने सहचारियों के साथ दुःखित होकर भाग निकला,
और पुराने सदन में जाकर स्थित हो गया, यही हाल सारे नगर
भर में होगया, सबके नेत्रों की टकटकी राम लक्ष्मण की तरफ़
लगी है, आज अनंग महाराज की धूम मची है, यह सबको
नंगा किये देता है, जो श्याम गौर जोड़ी को देखता है वह अपने
आपे से बाहर हो जाता है, और उन्हीं के पीछे पीछे लगजाता
है, जिधर राम की दृष्टि पड़ती है उधर स्थावर जंगम सृष्टि सभी
चौगुनी आनन्द के कारण विशेष प्रिय सलोनी सुन्दर दीखने
लगती है, लोग चकित हो रहे हैं कि आज क्यों नगर इतना
शोभायमान हो रहा है, कोई कहता है कि ये दोनों बालक नर
नारायण की सूरत में उतर आये हैं, कोई कहता है कि धनुष-
यज्ञ के देखने के लिये ब्रह्मा, विष्णु नरवेष में फिर रहे हैं, स्त्रियां
अटारियों पर से देखती हैं, एक कहती है कि मैं अपनी राज-
कन्या जानकी का विवाह इसी सांवले वर से करूंगी, दूसरी
कहती है यह कैसे हो सक्ता है, राजा प्रतिज्ञाहन कभी नहीं

होगा, वह बात का सच्चा, और क़ौल का पूरा है, तीसरी कहती है कि यदि राजा ऐसा ही हठ करेगा तो मैं अपने पूज्यदेव से प्रार्थना करूंगी, और वह मेरी श्रद्धा और भक्ति को स्मरण करके राम में अपना बल ऐसा प्रवेश कर देगा कि राम अति बली हो जायँगे, और धनुष को तृणवत् तोड़ डालेंगे, यह सुनकर सब नारियों ने कहा ऐसा ही करना ठीक है, इसी दिन के वास्ते हम लोगों ने देवताओं का पूजन किया था, सीता हमारी प्राणप्यारी लड़की है।

शिशुमंडली पीछे पीछे राम लक्ष्मण को निहारती जाती हुई आगे को बढ़ती जाती है, और अनेक मंदिरों को, अनेक धर्मशालाओं को, अनेक पथिकशालाओं को, अनेक बाग़ बग़ीचियों को दिखाती जाती है, और वे किस के हैं, और किस निमित्त बने हैं बताती जाती है, घूमते फिरते राम लक्ष्मण नगर के बाहर वहां आ पहुँचे, जहां स्वयंवर होनेवाला है, यहां पर दोनों भाई आश्चर्यमय हो गये, शरदृऋतु को दबा कर बसन्त ऋतु बरबस घुस आया है, अपना अधिकार भलीभांति जमा दिया है, चारों तरफ छोटे बड़े वृक्ष बौरों से बौरा गये हैं, पुष्पों से लद गये हैं, उन पर चिड़ियां चहचहा रही हैं, भौंरें गूंज कर रहे हैं, मधुमक्षिका भनभना रही हैं, मोर मोरनी नृत्य कर रही हैं, स्त्री पुरुष जो वहां कार्य करते हैं वा घूमते फिरते हैं बड़े आनन्दित हो रहे हैं, सुन्दर सड़कें निकली हैं, उनके किनारों पर चांदी सोने जड़ित खम्भे गड़े हैं, कौशेय की (रेशमी) डोरियां सुनहले रुपहले तारों से तनी हुई उनके ऊपर खिंची हैं और उन डोरियों से अनेक मणिमालायें लटक रही हैं, जो सूर्य की प्रभा के पड़ने से अकथनीय शोभा दे रही हैं, सैकड़ों वितान गड़े हैं, उनके अन्दर सुवर्णमय कुर्सियां रक्खी हैं, इन सबको

देख कर राम लक्ष्मण से कहते हैं कि हे भाई ! सूर्यास्त होने पर है, गुरु महाराज हम लोगों को याद करते होंगे, लौट चलना चाहिये, ऐसा निश्चय करके अपने साथी शिशुवों को जो उनके प्रेम में आनकर उनके साथ साथ घूमते और अपने घर को लेजा कर उनकी सेवा सत्कार बड़ी नम्रता के साथ करते विदा किये, और डरते डरते आनकर गुरु महाराज के पद्पंकज में शिर नाय कर आयसु पाकर बैठ गये, और फिर गुरु महाराज की आज्ञा पाकर संध्यावंदन किया, और जब मुनिराज ने शयन किया तब दोनों भाई उनके चरण दवाने लगे, और फिर उनकी आज्ञा पाकर दोनों भाई शयन करने को अपने विश्रामस्थान को सिधारे, राम लेटे हैं, लक्ष्मण बैठे हैं, और राम के चरण को चाप रहे हैं, जब राम प्रेम से बात करते करते सोगये तब भाई की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने भी शयन किया, प्रातःकाल राम उठ कर और शौचादिक कर्म करके गुरुपदकमल में मत्था टेक कर प्रसून लेने के लिये आज्ञा पाकर बाहर चले, थोड़ी दूर पर भूप के श्रेष्ठ बाग में प्रवेश किया, यहां भी वही वसंत ऋतु छाई है, फूल फूले हैं, फल लगे हैं, मधुकर गूंज रहे हैं, दोनों भाइयों का चित्त लोभायमान हो रहा है, कुछ काल तक उनके ऊपर ठहर गया, पर एकाएक वहां से उचक पड़ा, चारों दिशाओं में फिरने लगा, कर्णगोलक ने दहिने ओर ध्यान दिया तो सुना कि उधर से नूपुर और पायल आदिकों के शब्द घनघोर किये हुये उठे चले आ रहे हैं, मालूम होता है कि आज मानो अगोचर होता हुआ मघवा अपने ऐरावत हाथी पर सवार होकर विष्णु भगवान् से मिलने के लिये घंटा दिये हुये चला आता है, राम मालीगणों से पूछते हैं कि हे आरामरक्षको ! यह सुहावना कामदेव का उत्पन्न करनेहारा, मन को लुभानेवाला

शब्द कहां से आ रहा है, क्या पृथ्वी पर अथवा आकाश में हो रहा है, वे उत्तर देते हैं कि हे कमललोचन, हे मनोहारि ! इस औसर राजकुमारी सीता गिरजा पूजनार्थ अपनी सखियों सहित आ रही है, यह सुहावना शब्द उनके पदकंज के आभूषणों का हो रहा है, यह बातचीत हो रही थी कि इतने में सिय मनोहर वाणी से गीत गाती हुई सखियों के साथ बाग़ में प्रवेशित हुई और सखियों सहित सर में जो बाग़ के मध्य शोभायमान था मज्जन करके मुदित मन होती हुई श्रीगौरि महारानी के मंदिर में प्रवेश किया और अनुराग के साथ पूजा करके अपने लिये अपने मन में निज अनुरूप श्रेष्ठ वर मांगा, मंदिर में से सीताजी के निकलते ही एक सखी जो सबसे अलग होकर फुलवाड़ी देखने को गई थी आनकर मिली, उसकी दशा देख कर सब सखियां मुसकराती हुई पूछती हैं, तू कैसी भौंचकी सी हो रही है, क्या तुझ को हो गया है, तेरा शरीर क्यों पुलकायमान हो रहा है, और क्यों तेरे नेत्रों में आनन्द का जल भरा है, क्या कारण है बता तो सही,

कवित्त ।

एकै संग आई फुलवाई बात सांची कहु तनरुह छाइ नीर नैनन बहेरी है । कंप भरी ललित बिलोकी जात बावरी सी और भांति गात दशा और गति तेरी है ॥ बोलत न काहे नाहिं नेहरी निवाहे सखी गदगद कंठ कहु होत अति देरी है । एरी मैं हौं चेरी कहा विधि मति फेरी तोहिं मेरी सौंह सांची कहु कौन गति तेरी है ॥

वह बोल तो न सकी परन्तु जब अंगुली से निर्देश किया तब उसी तरफ़ सबके नेत्र लग गये तो क्या देखती हैं कि दो राजकुँवर एक श्याम दूसरा गौर फुलवाड़ी में फिर रहे हैं, उनकी दृष्टि अपने

लक्ष पर स्थित होगई, जानकी की दृष्टि भी उसी विषय पर जा पड़ी, चित्त प्रसन्न होगया, शरीर रोमाञ्चित होआया, वाणी गद्गद होगई, प्रेम की नदी हृदय-समुद्र की ओर बहचली, किस की शक्ति है जो उसको रोक सके, इतने में सखियों ने विचार किया कि अर्सा बहुत होगया, राजभवन को चलना चाहिये, पर उनमें से एक बड़ी चतुर सखी थी, वह जानकीजी के मन की गति को जान गई, उसने कहा हे सखियो ! ये दोनों कुँवर कल मुनिराज विश्वामित्र के साथ आये हैं, इनको देख कर जो हाल नगरभर में हो रहा है सो सुनो मैं कहती हूं.

जिन निज रूप मोहनी डारी । कीन्हे स्ववश नगर नर नारी ॥
वरणत छवि जहँ तहँ सब लोगू । अवशि देखिये देखन योगू ॥

---

दूसरी बार फिर जानकीजी देखने के लिये चलीं और नारदजी के वचन को स्मरण करके चारों दिशाओं में देखने लगीं, उन के कंकण और किंकिणि की ध्वनि सुनकर रामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण से कहते हैं .

---

कंकण किंकिण नूपुर धुनि सुनि । कहत लषणसन राम हृदयगुनि ॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही । मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहिओरा । सियमुख शशि भये नयनचकोरा॥
भये विलोचन चारु अचंचल । मनहुँसकुचि निमि तजेउ दृगंचल॥
तात जनकतनया यह सोई । धनुषयज्ञ जेहि कारण होई ॥
पूजन गौरि सखी लै आई । करति प्रकाश फिरति फुलवाई ॥
जासु विलोकि अलौकिक शोभा । सहज पुनीत मोर मन क्षोभा ॥
सो सब कारण जान विधाता । फरकहिं सुभग अंग सुन भ्राता ॥
रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ । मन कुपंथ पग धरै न काऊ ॥

मोहिं अतिशय प्रतीत जियकेरी। जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी॥
जिनके लहहिं न रिपु रणपीठी। नहिं लावहिं पर तिय मन डीठी॥
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं। ते नर वर थोरे जगमाहीं॥

जैसे रामचन्द्र का प्रेम सीता की ओर बढ़ा चढ़ा था, वैसेही सीता का प्रेम राम की ओर उमंग पर था, जैसे निम्नछन्दों से प्रकट होता है.

चितवति चकित चहूँ दिशि सीता। कहँ गये नृपकिशोर मनचीता॥
जहँ बिलोकि मृगशावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमलसितसेनी॥
लता ओट तब सखिन्ह लखाए। श्यामल गौर किशोर सुहाए॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति छवि देखी। पलकनिहूँ परिहरी निमेषी॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरद शशिहिं जनु चितव चकोरी॥
लोचन मगु रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन प्रेमवस जानी। कहि न सकहिं कछु मनसकुचानी॥

दोहा।

लताभवन ते प्रकट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु युग विमल विधु, जलद पटल बिलगाइ॥

रामचन्द्र की सुन्दरता को देखकर सब सखियां अपने को भूल गईं, कहां पर हैं, और किस के साथ आई हैं, और किस कार्य के लिये आई हैं, इन सबका ज्ञान जाता रहा, जहां हैं तहीं खड़ी हैं, उन में से एक सखी सीता का हाल जान कर धीरज धरकर बोली, हे सीते!

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिशोर देखि किन लेहू॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सम्मुख दोउ रघुवंश निहारे॥
नख सिख देखि राम की शोभा। सुमिरि पिता प्रण मन अतिक्षोभा॥

दोहा ।

देखन मिसु मृग विहँगतरु, फिरैं वहोरि वहोरि ।
निरखि निरखि रघुवीर छवि, बाढ़ी प्रीति न थोरि ॥

जानि कठिन शिव चाप विसूरति । चली राखि उर श्यामलमूरति ॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही । चारु चित्त भीतर लिखि लीन्ही ॥
प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख सनेह शोभा गुणखानी ॥
गई भवानी भवन वहोरी । वंदि चरण बोली कर जोरी ॥
जय जय जय गिरिराज किशोरी । जय महेश मुख चन्द्रचकोरी ॥
जय गजवदन षडानन माता । जगतजननि दामिनि द्युतिगाता ॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाव वेद नहिं जाना ॥
भवभव विभव पराभव कारिणि । विश्व विमोहिनि स्ववश विहारिणि ॥
सेवत तोहिं सुलभ फलचारी । वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी ॥
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे । सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे ॥
मोर मनोरथ जानहु नीके । वसहु सदा उरपुर सबहीके ॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारण तेही । अस कहि चरण गहे वैदेही ॥
विनय प्रेमवश भई भवानी । खसीमाल मूरति मुसुकानी ॥
सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ । बोली गौरि हर्ष हिय भरेऊ ॥
सुनु सिय सत्य अशीश हमारी । पूजहि मन कामना तुम्हारी ॥
नारद वचन सदा शुचि सांचा । सो वर मिलहि जाहि मन रांचा ॥

कुछ काल पीछे रामचन्द्र और लक्ष्मण सुमन को युगल कर में लिये हुये वापस आये, उन्हें गुरु महाराज को अर्पण किया और सारा वृत्तान्त कह सुनाया, विश्वामित्र महाराज सुन कर बड़े प्रसन्न हुये, और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होवे, दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही चारों तरफ बाजे गाजे बजने लगे, मंदिरों में से शंख और घंटा की ध्वनि कर्ण में पड़ने लगी, हर एक राजा के स्थान से विजय के बाजे गूंज उठे,

तुर्की, अर्वी, काबुली और सिंधी घोड़ों पर सवार होकर सजे सजाये अनेक राजा दिव्य मूर्ति धारण किये हुये अपने अपने स्थानों से वाहर निकल कर धनुपयज्ञ भूमि की ओर चल पड़े, और शीघ्र अपनी अपनी कुर्सियों पर बैठ गये. रामचन्द्र और लक्ष्मण श्री मुनिइन्द्रों के साथ आन पहुँचे, उनके स्वरूप के प्रकाश ने विद्युत की तरह सभासीनों के नेत्रों को चौंधादिया, सवके सब हकवका उठे, और एकायक खड़े होगये, किस निमित्त आये हैं भूल गये, सबकी टकटकी केवल राम की ओर लग गई, जो क्रूर स्वभाववाले थे, उन को तो राम का रूप बड़ा भयंकर दीखने लगा, पर जो सात्त्विकीवृत्तिवाले थे, उन को अति सुकुमार सलोने प्रमुदित वालक दीखने लगे, इतने में साठ हजार के लगभग पुरुषों ने शिवधनुप को लाकर रंगभूमि में रक्खा. तत्पश्चात् सीता अपनी सखियों के साथ जयमाल कर-कमल में लियेहुये धनुप के समीप में सुवर्णमय मंच पर बैठ गई, जिस के चन्द्रमुख के अमररस को पीछे की ओर से नाग अन्तरा (ओढ़नी) के अन्तर ही चोटी के रूप में पान कर रहा है, जिस के कमलकपोलों और ओष्ठों के ऊपर पुरुपन के मन भ्रमर होकर दूर से रमण कर रहे हैं, जिसके नेत्रों के अन्तर लोगों के नेत्र जाकर वहीं डगमगा गये हैं, जिस के शक्ति के सम्मुख औरों की शक्ति विलीन होगई है, जिस के कर्णभूपण ने कामियों के हृदय को विद्युत की तरह चमक कर हिला दिया है, ऐसी जगन्माता की अद्वितीय अनुपमेय शोभा की उपमा कोई कवि दे नहीं सक्ता है, क्योंकि उसके गुण, शील, स्वभाव, और रूप में कोई दूसरा है ही नहीं. जब राजा ने देखा कि यज्ञसभा यानी रंगभूमि ललित हो रही है, और राजा लोग काम की कामना में मतवाले होते हुये अपने अपने इष्टदेव को मना रहे हैं, पर उन के इष्टदेव उनके

तरफ से विमुख होकर स्वकार्य की सिद्धि के हेतु प्रयत्न कर रहे हैं, तब विरदावली बुलाये गये, और वे खड़े हो कर निम्नप्रकार कहने लगे ।

दोहा ।

बोले वन्दी वचन वर, सुनहु सकल महिपाल ।
प्रण विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ विशाल ॥

नृप भुजबल विधु शिवधनु राहू । गरुअ कठोर विदित सबकाहू ॥
रावण बाण महाभट भारे । देखि शरासन गवहिं सिधारे ॥
सोइ पुरारि कोदंड कठोरा । राजसमाज आज जेहिं तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत वैदेही । विनहिं विचार वरै हठि तेही ॥
सुनि प्रण सकल भूप अभिलापे । भटमानी अतिशय मनमाषे ॥
परिकर बांधि उठे अकुलाई । चले इष्टदेवन शिर नाई ॥
तमकि तमकि तकि शिवधनु धरहीं । उठइ न कोटि भांति बल करहीं ॥
जिन्हके कछु विचार मनमाहीं । चाप समीप महीप न जाहीं ॥

दोहा ।

तमकि धरहिं धनु मूढ़नृप, उठइ न चलहिं लजाइ ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ ॥

चौपाई ।

भूप सहस दश एकहि वारा । लगे उठावन टरै न टारा ॥
डिगै न शंभु शरासन कैसे । कामी वचन सती मन जैसे ॥
सब नृप भये योग उपहाँसी । जैसे विनु विराग संन्यासी ॥
कीरति विजय वीरता भारी । चले चाप कर सरवस हारी ॥
श्रीहत भये हारि हिय राजा । बैठे निज निज जाइ समाजा ॥
नृपन विलोकि जनक अकुलाने । बोले वचन रोप जनु साने ॥
द्वीप द्वीप के भूपति नाना । आये सुनि हम जो प्रण ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुज शरीरा । विपुल वीर आये रणधीरा ॥

दोहा ।

कुँवरि मनोहरि विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय ।
पावनहार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥

चौपाई ।

कहहु काहि यह लाभ न भावा । काहु न शंकर चाप चढ़ावा ॥
रहा चढ़ाउब तोरब भाई । तिल भरि भूमि न सकेउ छुड़ाई ॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी । वीर विहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृहजाहू । लिखा न विधि वैदेहि बिवाहू ॥
सुकृत जाइ जो प्रण परिहरऊँ । कुँवरि कुँवारि रहै का करऊँ ॥
जो जनतेउँ बिनु भट महि भाई । तौ प्रण करि होत्यौं न हँसाई ॥
जनक वचन सुनि सब नर नारी । देखि जानकी भये दुखारी ॥
माखे लषण कुटिल भईं भौंहैं । रदपुट फरकत नयन रिसोहैं ॥

जनक महाराज के वचन सुनकर लक्ष्मण जी क्रोधित हुये, भौंहैं उनकी कमान की तरह टेढ़ी होगईं, होठ फड़कने लगे, और नेत्र क्रोध के मारे लाल होगये, हाथ जोड़कर राम से कहने लगे.

रघुबंशिन महँ जहँ कोउ होई । तेहि समाज अस कहहि न कोई ॥
कही जनकजस अनुचितबानी । विद्यमान रघुकुलमणि जानी ॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू । कहौं स्वभाव न कछु अभिमानू ॥
जो राउर अनुशासन पाऊं । कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊं ॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी । सकौं मेरु मूलक इव तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना । का बापुरो पिनाक पुराना ॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ । कौतुक करौं विलोकिय सोऊ ॥
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं । शत योजन प्रमाण लै धावौं ॥

दोहा ।

तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बलं नाथ ।
जौं न करौं प्रभुपद शपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ ॥

लक्ष्मण जी की इस वाणीने जनक राजा को संकोच में डाल दिया, सिय के हिय को हुलसा दिया, मुनियों के प्रेम को बढ़ा दिया, राम ने लक्ष्मण को सैन करके अपने निकट बड़े प्रेम के साथ बैठा लिया, जब विश्वामित्र महाराज ने देखा कि जानकी जी अति दुःखित हैं, जनक जी घबराये हैं, और समय शुभ आ गया है, रामचन्द्र जी से कहा "उठहु राम भंजहु भव चापू। मेटहु तात जनक परितापू" ऐसी गुरु की आज्ञा पाकर रामचन्द्र साधारण खड़े होगये, और धनुष को ऐसा देखा जैसे सिंह मृग की ओर, और बाज़ लवा की ओर देखता है, और शीघ्र जाकर दोनों हाथों से उसको उठा कर ऐसी फुर्ती से तोड़ा कि किसी को यह न जान पड़ा कि कब उन्होंने धनुप को हाथ में लिया, और कब दो टुकड़े करके पृथ्वी पर डाल दिया, धनुष टूटने की तड़क विद्युत् की तड़क की ऐसी होकर ऐसी चमकी कि दुष्ट राजाओं के हृदय दहल उठे, मुख कुम्हला गये, शिर की पाग गिर पड़ी, नेत्रों में जाला छा गया, पर जो शुद्ध अन्तःकरणवाले थे उनको ब्रह्म का दर्शन मिला, हृदय प्रेम से भरगया, अपने को धन्यवाद दिया, और जानकी को जगन्माता जानकर मनहीमन में नमस्कार किया, और बड़ी नम्रता से खड़े होकर अपना जन्म सफल करने लगे, आज आकाशदेव फूले नहीं समाता है, क्योंकि उसके पुत्र शब्द की महिमा अतुल होरही है, ऊपर तो देवगण अनेक प्रकार के बाजे हृदयानन्द के बढ़ानेवाले बजा रहे हैं और नीचे मनुष्यगण, एक तरफ से भूसुरों की वेदध्वनि, ऋषियों की शंखध्वनि, और दूसरी तरफ से चन्द्रमुखी स्त्रियों के सुहावने अमृत से सने गीत और साथही साथ पुष्पों के झकोरे वह आनन्द दे रहे हैं, कि जिसकी तुलना अतुल है, आज जो मन, श्रोत्र और नेत्रेन्द्रियों के अधीन है, वह समझता है, कि

न्हीं के द्वारा में भ्रमर होकर अपने लक्ष्य के कमलकपोलों का मकरन्दरस ले रहाहूं, आज द्वैतवादी, अद्वितीय आनन्द में मग्न हैं, ऐसा विचार करते हुये कि हमारा सिद्धान्त ठीक है; क्योंकि माया श्रीजानकी जी, और ब्रह्म श्रीरामजी एक दूसरे के सम्मुख खड़े हैं, और अद्वैतवादी भी द्रष्टा दृश्य के भेद को उड़ाकर अपने स्वरूप की महिमा को देखकर बड़े हर्षित हो रहे हैं, इस काल के अथाह आनन्द के सागर में सबका मन ऐसा मग्न हो गया है कि उसका पता नहीं लगता है, सबकी जाति पांति उड़गई है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब ऐसे मिल गये हैं कि मानो सब का शरीर एक शरीर होगया है, छूतछात का डर जाता रहा है, सबकी टकटकी सीता राम में लगी है, क्या आज जनकपुरी कैलासपुरी है, या स्वर्ग है, या ब्रह्मलोक है, किसके साथ इसकी उपमा दूं मेरे समझ में नहीं आता है, यही कहना ठीक है कि यह इस काल अनुपमेय है, हे पाठक जनो! यदि मैं कहीं और का और लिख गयाहूं तो आप क्षमा करें क्योंकि मैं भी अपने को इस आनन्द में भूल गयाहूं।

हे पाठकजनो! जब धनुष राम के करकमल करके टूटा, सब लोग अवाच्य खड़े रहगये, क्योंकि सबका मन अपने नेत्रेन्द्रियों के साथ रामके मुखारविन्द के ऊपर जम गया था, जब नेत्र हटे तब मन भी हटे, दोनों मित्र होकर आनन्द लूट रहे हैं, पर मन को भय का संस्कार अपने स्वामी जीवात्मा का लगा है, जब उसको मालूम हुआ कि मैं अपने कार्य करने में देरी कर रहाहूं, उठा और अपनी वृत्ति से राम के चन्द्रमुख को आच्छादित करके उस रूप को नेत्रद्वारा लेजाकर, हृदयस्थ जीवात्मा को अर्पण किया, वह भी आनन्द से भर गया, फिर थोड़ी देर के पीछे मन बुद्धि चित्त अहंकार वृत्तियां अभ्यन्तर, कुछ कुछ कार्य करने लगीं,

सखियों ने जानकी जी के श्रोत्रेन्द्रिय में चुपके से कहा हे प्यारी ! तुम्हारे प्राणों के प्राण, नेत्रों के तारे सुख के भवन तुम्हारे सामने खड़े हैं, उनकी हंसग्रीवा को अपने करकमल करके जयमाल से सुशोभित करो, और अपने मनोगत कामना की पूर्णता पर उस आनन्दरस को पीओ जिसके लिये कई दिनों से पपीहा की तरह स्वाती के बूंद के लिये तरस रही थी, यह शब्द पड़तेही युगल करकमल उठे और माला को शंखग्रीवा में डालदी, उस समय रामजी ने जो अपने शिर को जानकी के मुखकी तरफ झुकाया तो मालूम भया कि अनंगअंग धारणकरके रति के सामने खड़े अनुराग के साथ चुपचाप खड़ा है, उन दोनों मूर्तियों को देख करके कुमारी स्त्रियां तो यह इच्छा करती हैं कि यदि पति मिले तो राम के ऐसा मिले, किशोर पुरुष यह इच्छा करते हैं कि यदि पत्नी मिले तो जानकी की ऐसी, जो लड़कोरी स्त्रियां हैं वे चाहती हैं कि यदि जामाता मिले तो राम के ऐसा मिले, राम ने देखा कि सबका अतुल स्नेह मेरे में होरहा है मनही मनमें प्रतिज्ञा की कि मैं इन सबकी शुद्ध कामना को अवश्य किसी न किसी समय पूर्ण करूंगा. हे पाठकजनो ! राम को सुखी देखकर विश्वामित्र ऐसे ऊपर को उछल रहे हैं जैसे समुद्र राकेश को देखकर उछलने लगता है, और जानकी को सुखी देखकर उन की माता का हृदय ऐसा ऊपर को आनन्द के मारे पैंग मारता है जैसे चकोरी का हृदय चन्द्रमा को देखकर उछलने लगता है. जनक महाराज ब्रह्मवित् को तो उभय पक्षों करके आनन्द मिल रहा है, यानी उनको सगुण निर्गुण दोनों रूप प्रिय होरहे हैं, नेत्र करके विष्णु और लक्ष्मी को देख रहे हैं और मन करके अपने से अपृथक् अपना स्वरूप चेतन आत्मा का अनुभव कर रहे हैं, हे पाठकजनो ! मैं जनकपुरी का हाल क्या कहूं, वहां के प्रेम के

प्रकट करने में मेरी लेखनी असमर्थ है, जिस समय नगर में ख़बर पहुँची कि राम ने शिवधनुष को तोड़ा और जानकी के करकमल के ग्रहण करने के अधिकारी हुये, बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी अपने अपने मकानों से बाहर निकलकर आनन्दमंगल करने लगे, स्त्रियां एक दूसरे से हँस हँसकर कहती हैं कि देखो हम लोगों की प्रार्थना में कितनी शक्ति है, जब हमारी प्रार्थना को हमारे इष्टदेव ने सुनकर शिवधनुष की कठोरता और गंभीरता को हरलिया, तब हमारे प्यारे राम उसके तोड़ने में समर्थ हुये, चलो अपने प्यारे राम जानकी को एकत्र लोचन भर देखें, और अपने तप्त हृदय को शीतल करें, आज हम लोगों से अधिकतर कौन भाग्यवान् हो सक्ता है, कि जिसके जामाता श्रीरामचन्द्रहुये हैं, जिन्होंने सहस्रों अभिमानी राजाओं की कान्ति को रंगभूमि में ऐसा तिरस्कृत कर दियाहै जैसे सूर्य भगवान् निकलते ही तम के आश्रित तारेगण को तिरस्कृत कर देते हैं, यह कहते हुये चारों तरफ से सब दौड़े हुये दधि, दूर्वा, रोरी, अक्षत शकुन की चीजें हाथ में लिये हुये राजमंदिर के सम्मुख चले जाते हैं, कोई किसी से बातचीत नहीं करता है, सबके नेत्र एक लक्ष्य पर लगे हैं, कब पहुँचें, और कब अपने कामना को पूर्ण करें, थोड़ी देर में लाखों मनुष्य राजद्वार पर इकट्ठा हो गये, बड़ा कोलाहल मचगया, राम जानकी को साथ साथ देखने की इच्छा सबको हो रही है, उनके मन की अभिलाषा को पूर्ण करना अवश्य हुआ, मुनिराज की आज्ञा से जिस समय राम जानकी एक ऊंचे मंच पर खड़े होकर लोगों की दृष्टि के विषय भये, उस काल लोगों के प्रेम का नद बह चला, ऐसा दीखता था कि मानो राम जानकी दो चन्द्रमा शरद् ऋतु पूर्णिमा के उदय होकर एक जगह गगन में स्थित हैं, और नीचे मनुष्यों के समूह समुद्र की सूरत में ग्रीवा उठाये हुये ऊपर

को उछल रहे हैं, जब लोगों ने हाथ उठा कर "जय राम जानकी की" ऐसा शब्द उच्चारण किया तो वे ऊपर उठे हुये हाथ ऐसे सुन्दर दीखने लगे जैसे असंख्य लहरें समुद्र में से सुखदायक शब्द करती हुई ऊपर को उठ खड़ी होजाती हैं, और उनके हृदयरूपी हिमाचल पहाड़ से गंगा, यमुना की आकार में नेत्रद्वारा प्रेम का शुद्ध जल निकल कर बहने लगा, उस जल को देखकर दूसरे तरफ भी वैसाही आनन्द का जल निकल कर सामने के समुद्र की ओर चल पड़ा, आज इन दोनों समुद्रों का जल अनुरागवद्ध ऐसा मिल गया है कि दोनों भेद को त्यागे हुये कभी ऊपर और कभी नीचे आ जा रहे हैं, उस प्रेम को देखकर देवता भी चकित होगये, और एक दूसरे से कहने लगे कि हम लोगों में ऐसा सच्चा प्रेम कहां है, जिसको देखकर हमारे स्वामी इस प्रकार हमारे ऊपर रीझें, धन्य हैं जनकनगर के वासी, धन्य हैं मनुष्य लोग जिनको यह अकथनीय आनन्द प्राप्त है, जनकराज की प्रशंसा पूरी पूरी कौन कर सक्ता है कि जिसकी प्रजा अपने राजा में ऐसी अनुरागवद्ध हो रही है, हे राजाओ! यदि आप लोग भी अपनी प्रजाओं के साथ अङ्गाङ्गी भाव रक्खोगे तो वे भी जनक प्रजावत् तुम्हारे साथ अनुरागवद्ध रहेंगी, ऐसा करके देखलो, आपको ईश्वर ने प्रजाओं की रक्षा और सेवानिमित्त भेजा है, उनके धनहरणनिमित्त नहीं, यदि वे जड़ हैं तो आप पालो हैं, जब जड़ बली होती है, तो वृक्ष हरा भरा बना रहता है, नहीं तो बाह्य वायु के धक्कों को न सह कर गिर पड़ता है, और उसके फल को उसका स्वामी खो बैठता है.

जिस समय राम ने शिवधनुष तोड़कर सीताजी को स्वयंवर में जीता और आनन्द को प्राप्त हुये, उसी क्षण स्नेह का तार

विद्युत् की तरह राजा दशरथ और कौशल्यादिक रानियों के मुर्झाये हुये हृदयकमल को ऐसा खिला दिया कि उनके आभ्यन्तरीय आनन्द का प्रकाश उनके चेहरों पर जगमगा उठा, और ऐसाही हाल पुरवासियों का भी होगया, परन्तु उन के एकाएक अन्तःकरण में इस हर्ष होने का क्या कारण है किसी के चित्त में नहीं आया, जब लोग परस्पर मिलते हैं तो एक दूसरे को मुदित देखते हैं, पर क्यों ऐसा देखते हैं वे अनुभव नहीं कर सके हैं, राजा दशरथ अपनी विवेकवती रानी कौशल्या के पास जाकर कहते हैं हे सुलोचने! आज मैं स्त्री, पुरुष, लड़की, लड़के, पेड़, पालो, स्थावर, जंगम, पशु, पक्षी, जीवजन्तु सभी को हर्षित पाता हूं, पर क्यों ऐसा देखता हूं इसका कारण नहीं जानता हूं, यदि तुम को कुछ मालूम हो तो कहो, वह कहती हैं कि हे प्राणनाथ! आज मेरे स्तन का पय मारे हुलास के भरा आ रहा है, मेरा दिल कहता है कि मेरे प्यारे पुत्र राम को कोई अलौकिक अपूर्व वस्तु प्राप्त हुई है, और उसकी खबर शीघ्र आनेवाली है, क्योंकि माता पुत्र के मध्य जो आभ्यन्तरीय प्रेम है उसका तार तड़ित की तरह अखण्डित लगातार चला करता है, आप गुरु महाराज के पास जायँ, वह अवश्य सच्चा हाल कहेंगे, यह सुनकर राजा चले, राह में गुरु महाराज मिले, और मन्द हास के साथ राजा जनक के करकमल करके लिखे हुये पत्र को दे दिया, उसको बांचकर राजा दशरथ का शरीर पुलकायमान होगया, नेत्र मारे आनन्द के डबडबा आये, अवाच्य होकर गुरु महाराज के चरणपङ्कज में गिर पड़े, उनको उठाकर गुरु महाराज ने आशीर्वाद देकर कहा कि रनिवास में जाकर शुभ समाचार को सुना आओ, वैसाही किया गया, अब चारों तरफ़ अनेक बाजे बजने लगे, राजद्वार स्वर्गद्वार हो रहा है, वन्दी-

गण राजा के यश और कीर्ति को पुष्पित ललित छन्दों में उच्चारण करने लगे, भूसुर नभसुरों की स्तुति राजपुत्रों के कल्याणार्थ करने लगे, मयंकमुखी गजगामिनी नारियां मंगल के गीत गाने लगीं, चारों तरफ बाजे अनेक प्रकार के बजने लगे, ऋषिमंडली ने तुरही तान दी, घर घर तैयारियां होने लगीं, बाल, वृद्ध, किशोर, सभी बनठन कर खड़े होगये, हाथी, घोड़े, नालकी, पालकी सजाये जाने लगे, चतुरंगिणी सेना भी बनी ठनी खड़ी होगई, सम्बन्धी राजा लोग, जिनको निमंत्रणपत्र भेजे गये थे, बड़े ठाट बाट से चले आ रहे हैं, देश की प्रजा उमंग में भरीहुई दौड़ी चली आ रही है, प्रश्न उठता है कि क्या प्रजा बुलाई गई थी जो चली आ रही है, उत्तर मिलता है कि इतने मनुष्यगण को कौन बुला सक्ता है, वे स्वेच्छा से चले आरहे हैं, क्योंकि राम सबको प्रिय हैं, कोई उनको स्वामी, कोई मित्र, कोई पुत्र और कोई भ्राता जानता है, क्या घरवालों को निमंत्रण दिया जाता है, कोसों तक बरात छितरी बितरी पड़ी है, जिस समय राजा दशरथ इन्द्रवत् अपने पुत्र भरत शत्रुघ्न को दहिने बायें लेकर हाथी के ऊपर मणिजटित, छत्रयुक्त, सुवर्णमय अम्बारी के अन्तर बैठे और डंका देकर चले, और उनके आगे पीछे बरात गमन की तो जो शोभा उस काल दृष्टिगोचर हुई वह अकथनीय है, हे पाठकजनो ! मैं क्या कहूं मन तो चुप चाप है कलम बंद है, पर दृष्टि खुली है और मैं देखता हूं कि संसार में दो अन्तराय ( परदे ) अनादिकाल के पड़ेहैं, आजतक न वे गले हैं, और न उनके गलने की आशा है, उनमें से एक तो भविष्यकाल का परदा है, और दूसरा भूतकाल का, पहिले के पीछे का दृश्य तम से ऐसा आवृत है कि आजतक पता न लगा कि इस अघटित घटना की रचना कहां तक चली गई है, और वैसे ही

दूसरे के आगे कितना गहिरा और विस्तृत है, पता नहीं लगताहै, और न इन दोनों परदों के मध्य का पता मिलता है, एक परदे से निकला नहीं कि दूसरे तरफ तिरोभाव भया नहीं, अनेक प्रकार के चरित्र हरदम निकला पैठा करते हैं, पर उनका आदि और अन्त आज तक किसी की बुद्धि का विषय न हुआ है, और न होगा, यह अपूर्व रचना पुरुष प्रकृति की अनादि काल से चली आरही है, और चली जायगी क्या क्या इस अयोध्यापुरी में नहीं हुआ है, और क्या क्या भविष्य में नहीं होगा, हे मित्रो! हम तुम इन सबके द्रष्टा हो चुके हैं, और भविष्य में भी होंगे, चाहे राम को भजकर आवागमन से रहित होकर राम हो जाओ, और चाहे प्रमाद करके अनेक जन्म धारण करो, अन्तर केवल इतना ही रहेगा कि पहली अवस्था में ईश्वरस्वरूप सच्चिदानन्द रहोगे, और दूसरी अवस्था में उसके विरुद्ध दुःखस्वरूप अल्पज्ञ जीव बने रहो गे.

जब विश्राम निमित्त बरात सरयू के किनारे पर एक जगह ठहरी तो उसको कोसों तक फैली हुई देख करके गुरु वशिष्ठ महाराज से राजा दशरथ ने कहा कि हे प्रभो! इतने बड़े दलके बोझ को क्या राजा जनक उठा सकेंगे, यह सुनकर वह हँस पड़े, और कहने लगे, हे राजन्! आप अपने नाम और जनक के नामों का अर्थ सुन लें, फिर दोनों में जो भेद है, उस को समझ लें, हे राजन्! जिसकी अवधि (हद) आगे नहीं है, वह अवध है, यानी जिसके परे और कोई योनि नहीं है वह मनुष्ययोनि है, सो हे राजन्! मनुष्य से बढ़कर और कोई योनि नहीं है, यही सबमें श्रेष्ठ है, तिस मनुष्यशरीर में जो दश इन्द्रियां हैं, यानी पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां, उन्हीं करके युक्त जो यह रथशरीर दीख पड़ता है, उसका जो स्वामी

है, वही दशरथ कहा जाता है, और मिथिला का अर्थ शत्रुओं को मारकर बाहर निकाल देना है, जिसने काम, क्रोध, लोभ, मोहरूपी वैरी को अपने अन्तःकरणरूपी राज से बाहर निकाल दिया है, वही मिथिलेश कहा जाता है, अब अपने में और राजा जनक में जो भेद है, उसको आप भली प्रकार समझ सक्ते हैं, जिस राजा के पुरोहित शतानन्द जी गौतमऋषि के पुत्र हों, वहां किस वस्तु की कमी हो सक्ती है.

जब बरात ने मिथिलादेश की हरी भरी फलदात्री भूमि देखी, सबके नेत्र में शीतलता, चित्त में प्रसन्नता, और हृदय में प्रफुल्लता आगई, सड़कों के किनारे किनारे फलों के वृक्ष लगे हैं, कोस कोस पर कुवें खुदे हैं, गांव के आगे फुलवारियां लगी हैं, और उसके अन्दर देवमन्दिर बने हैं, और गांवों के अभ्यन्तर से आरोग्य यौवन से भरी हुई हेमांगी युवतियां मंगल के गीत गाती हुई पीत तण्डुल पुरुषों के मुखारविन्दों के तरफ कूद कूद कर ऐसे ज़ोरों के साथ फेंकती हैं कि मानो श्रवण नक्षत्र के बूंद, वायु के झकोरों से झकोरित होकर उनके ऊपर गिरते हैं, जो उनके हर्ष के कारण बन रहे हैं, गांवों के चारों तरफ अनेक प्रकार के अन्नों की हरियाली छाई है, और तालों और झीलों में श्वेत श्याम, गुलाबी कमल खिले हैं, उनमें से ताजे (नूतन) फूलों को सुवर्ण की थालियों में रखकर सुन्दर प्रिय किशोर पुरुष आगे खड़े होकर राजा दशरथ को बड़े हर्ष और नम्रता के साथ निछावर करते हैं मधुर वाणी से यह कहते हुये कि हे प्रभो ! आप हमारे राजा जनकवत् मान्य और पूजनीय हैं, बल्कि उनसे भी आप विशेष पूजनीय हैं, क्योंकि हमारी प्राणप्यारी राजकन्या सीताजी के आप श्वशुर हैं, हमारा धर्म यही है कि हम लोग आप की सेवा करें, इस रसीली वाणी

को सुनते हुये राजा दशरथ बड़े हर्ष के साथ उन दी हुई पुष्प से भरी हुई थालियों को उठ उठ कर लेते हैं, और सुमंत्र को देते हैं, और उनके दान की प्रशंसा करते हैं, ऐसे ही आनन्द करते हुये और जीवन का आनन्द उठाते हुये एक पक्ष के बाद जनकपुर के निकट पहुँच गये, जब जनक नगर के निकट बरात पहुँची, और विश्राम निमित्त एक जगह पर ठहरी तो राजा जनक की तरफ़ से सामग्री के प्रबन्ध को देख कर राजा दशरथ बड़े विस्मय को प्राप्त हो गये, सजे हुये घोड़ों की पंक्तियाँ, अम्बारियों से कसी हुई हाथियों की कतारें, मणि जटित सुवर्णमय झूलें, बैलों पर पड़े हुये रथों की लाइनें, तुर्की, अरबी, सिंधी, सुशोभित अश्वों करके जुते हुये छैले बांके राजकुमारों की सवारी के लिये बग्घियों की समूहें, फूल फलों के ढेरें, अन्नों के अम्बारें, द्रष्टा के मन बुद्धि को चक्कर में डालती थीं, जिस किसी को जिस वस्तु की इच्छा होती है, उसी काल वह मिलती है, मणि माणिक की बाहुल्यता ने उनके मूल को अमूल्य करदिया, जिधर देखो उधर ढेर के ढेर लगे हैं, अप्सराओं का नाच, गन्धर्वों का गान, द्रष्टाओं के मन को हरे लेते हैं, ऋषियों का हरिहर कीर्तन, भूसुरों की रसीली वेदध्वनि, श्रोताओं के हृदय को आनन्दरस करके श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा भरे देती हैं, समय समय पर अनेक प्रकार के व्यञ्जन बने हुये तैयार रहते हैं, सब कोई इच्छा-पूर्वक पाते हैं, और उसकी स्वादिष्टता पर आश्चर्य करते हैं, गुरु वशिष्ठ महाराज ने राजा दशरथ से कहा कि यह सब अपूर्व रचना सतानन्द जी के ऋद्धि सिद्धि की है, हे राजन्! एक बरात क्या सहस्रों बरातें ऐसी आजायँ तो ऐसी ही पूरी सामग्री उन सबको वर्षों तक मिलती जायगी, मैं उनके तपोबल को जानता हूं, हे राजन्! आप धन्य हैं, जिसके सम्बन्धी राजा

जनक हुये, और जिसकी बहू सीता हुई, आज आप समान दूसरा संसार में कौन है.

बरात के पहुँचने का समाचार सुन कर राजा जनक की तरफ़ से बरात के अग्र गमन के लिये राजकीय प्रस्थान (जलूस) चला, और जब दोनों दल मिल गये तो उस समय एक अद्वितीय शोभा दिखाई दी, जिस के लिखने में मेरी लेखनी अशक्त है, पृथ्वी मालूम होती थी कि मानो बहुरंगी होती हुई अनेक कौतुकों को करती हुई ऊपर को उछली जा रही है, और उस के शृंगार के देखने के लिये आकाश देवगण सहित नीचे को चला आ रहा है, दोनों तरफ़ के घोड़े गर्व के मारे पैर को धरती पर न धरते हुये ऊपर को उछले चले जा रहे हैं, और उन के ऊपर रणबांकुरे सवार होकर ऐसे कावे देते हैं कि मानो वे घोड़े सदेह आकाश में पहुँच कर सूर्यनारायण के घोड़ों के साथ घुड़दौड़ करने को कूद रहे हैं, हाथी सोने चांदी के फूल जटित भूषणों से आभूषित होते हुये ऐसे झूम झूम के साथ चले जाते हैं कि मानो अनेक छोटी काली पहाड़ियां प्राण धारण करके अनेक प्रकार के पुष्पों को अपने ऊपर जमाये हुये आगे को चली जा रही हैं, और उन्हीं हाथियों के ऊपर मणि जटित सुवर्ण के हौदों में बैठे हुये सुन्दर स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकायें ऐसे प्रिय लगते हैं कि मानो एक एक पृथक् होते हुये छोटे छोटे पहाड़ी पर एक एक तड़ाग विषे, जिसके चारों किनारों पर फूले हुये पलाश वृक्ष लगे हों श्वेत, श्याम, गुलाबी रंग के अनेक कमल खिले हुये ऊपर की ओर देखते, मुसकराते चले जाते हैं; संग्रामी बाजे वीररस को, विवाही बाजे शृंगार रस को, और उन्हीं के साथ साथ मिली हुई ब्राह्मणों के मुख से निकली हुई वेदध्वनि, मयंकमुखी कोकिलबैनी नारियों के

मुख से मंगल के सुहावने गीत और मुनियों की रोमाञ्चित स्तुति की शब्दध्वनि चारों दिशाओं में गूंज रही है, फिर इन्हीं के संग तलवारों की चमक, बंदूकों की कड़क, तोपों की धमक, हाथियों का चिंघार, पालकी नालकी के कहारों का हुंकार, एक अकथनीय दृश्यको दर्शा रहे हैं; लोगों के बहु प्रकार के वस्त्राभूषण की सुंदरता, उन के शरीरों की सुन्दरता को, सैकड़ों गुणा विशेष बढ़ाती हुई बता रही है कि उन की जगन्माता पृथ्वी कितनी बड़ी धनी उदारचित्तवाली है कि जिस के पुत्र पुत्री अपनी इच्छानुसार धन को लेते जाते हैं, और वह प्रसन्नतापूर्वक उनको देती जाती है, हे मनुष्यो ! यदि ऐसी माता की सेवा अहर्निश तन, मन से करते रहोगे तो वाञ्छित पदार्थों को अवश्य पाते रहोगे.

ऊपर कहे हुये प्रकार जब बरात नगर के अन्तर प्रवेश हुई, और उत्तम जनवासा पाया, उसके थोड़े काल के पीछे विश्वामित्र महाराज राम लक्ष्मण को साथ लिये हुये राजा दशरथ के निकट पहुँचे, पिता पुत्र की ओर, और पुत्र पिता की ओर, देख कर ऐसे दौड़े जैसे गाय बछरे की तरफ और बछरा गाय की तरफ दौड़ता है, और फिर एक दूसरे से ऐसे चिपट गये जैसे चुम्बक पत्थर से लोहपिण्ड चिपट जाता है, तत्पश्चात् भाई से भाई मिले, ऐसे मेल मिलाप को कोठे पर से देखते ही जानकी जी के हृदय में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो आई कि जब मैं अपनी बहिनों के साथ साथ खेली हूं, साथ साथ रही हूं तो यदि साथ ही साथ विवाह के पीछे भी रहने का अवसर पाऊं तो क्याही अच्छी बात हो, परन्तु यह तबही हो सक्ता है जब मेरे साथही साथ मेरी बहिनों का भी विवाह मेरे देवरों के साथ कर दिया जाय, ऐसा सोच कर बड़े प्रेम के साथ दृढ़ श्रद्धा करके गौरी की आराधना करने लगीं और जो भनक उनके कर्णं

में पड़ी उससे उनको निश्चय हुआ कि उनकी प्रार्थना सुनी गई, और वह हर्षित होती हुई अपनी बहिनों से नीचे जा मिलीं और सखियों के साथ हँसी दिल्लगी की बात होने लगी.

जानकीजी ने बरात दल को देखकर और अपने पति राम को अपनी अनन्य भक्ति दिखलाने के निमित्त अन्नपूर्णा देवी का स्मरण किया और जब वह आई तब कहा हे मातः! आज तू मेरे सच्चे प्रेम को मेरे पति राम पर प्रकट कर दे ताकि उनको मालूम होजाय कि मैं अपने धर्म सेवकाई से कभी च्युत न हूं और न होंगी, देवी ने वैसाही किया, जिसका प्रभाव यह हुआ कि सब बरातियों को अद्वितीय आनन्द मिल रहा है, जिसकी जो इच्छा होती है वह इच्छा करते ही इच्छित पदार्थ को पाता है, भाइयों के मध्य प्रेम की नदी बह रही है, सम्बन्धी मुदित हो रहे हैं, प्रजा सुखी हैं, नौकर चाकर असोच हैं, पशु, पक्षी कुलेल कर रहे हैं, हे मित्र! यह सब सुखसामग्री जभी दिखाई देती है जब पत्नी पति की सेवा में अनुरागबद्ध होकर संयुक्त होती है, रामचन्द्रजी जनकतनया की भक्तिवृत्ति को जो उनके तरफ़ चल रही थी देखकर बड़े प्रसन्न हुये, और जब अपने गुप्त अगाध प्रेम को समुद्र को प्रेरणा किया तो वह भी बह चला, कहीं उसका वारापार नहीं, जानकी जिधर देखती हैं उधर अपने नेत्रों के सामने राम कोही पाती हैं राम के सिवाय कुछ नहीं उनको दिखाई देता है, अपना सारा शरीर राम के शरीर के ऐसा दिखाई देता है, और जब उठकर दर्पण में अपने मुख को देखने लगीं तो उसमें भी अपना मुख राम के मुख के ऐसाही पाया, तब सोचने लगीं कि क्या मैं राम होगई क्या मेरा स्त्रीस्वभाव व स्त्रीचिह्न जाता रहा ऐसा सोचते सोचते चारों तरफ़ देखकर बोल उठीं "मुहिमा तुहिमा खड्ग खंभ में जहँ देखूं तहँ राम ही राम"

तत्पश्चात् आंखों को बंद करलिया और पृथ्वी पर दण्डवत् गिर कर भगवान् की स्तुति निम्न प्रकार करने लगीं.

अखण्डं चिदानन्द देवाधिदेवं
मुनीन्द्रादि रुद्रादि इन्द्रादि सेव्रं
मुनीन्द्रादि इन्द्रादि चन्द्रादि मित्रं
नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं
धरा त्वं जलाग्नी मरुत्वं नभस्त्वं
घटस्त्वं पटस्त्वं अणुस्त्वं महत्वं
मनस्त्वं वचस्त्वं दृशस्त्वं श्रुतस्त्वं
नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्त्वं
अडोलं अतोलं अमोलं अमानं
अदेहं अछेहं अनेहं निदानं
अजापं अशापं अथापं अतापं
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमापं
न श्रामं न धामं न शीतं न उष्णं
न रक्तं न पीतं न श्वेतं न कृष्णं
न शेषं अशेषं न रेखं न रूपं
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूपं
न छाया न माया न देशो न कालो
न आग्रं न स्वप्नं न वृद्धो न बालो
न ह्रस्वं न दीर्घं न रम्यं अरम्यं

नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं
न बंधं न मुक्तं न मौनं न वक्त्रं
न धूम्रं न तेजो न थामी न नक्तं
न युक्तं अयुक्तं न रक्तं विरक्तं
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अशक्तं
न रुष्टं न शुष्टं न इष्टं अनिष्टं
न ज्येष्ठं कनिष्ठं न मिष्टं अमिष्टं
न अग्रं न पृष्टं न तुल्यं न धृष्टं
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अधिष्टं
न वक्त्रं न घ्राणं न कर्णं न अक्षं
न हस्तं न पादं न शीशं न लक्षं
कथं सुन्दरं सुन्दरं नाम ध्येयं
नमस्ते नमस्ते नमस्ते ऽप्रमेयं

मन ही मन में यह कहती हुई कि हे प्राणनाथ ! हे प्रभो ! यह मुझको निश्चय होगया है कि आपका प्रेम मेरे तरफ़ अगाध है, अब आप अपने अद्वितीय प्रेम के समुद्र को समेटिये, फिर नेत्र खोला देखा कि पहिले का सारा व्यवहार वैसाही जमा हुआ है, हे स्त्री, पुरुषो ! जो चमत्कार मालिक की सेवा में है वह किसीमें नहीं है, सहस्रों स्त्रियां अपने पति की सेवा करके मुक्त हो गईं और होती जायँगी, सहस्रों सेवक अपने स्वामी की निष्कपट सेवा करके स्वर्ग को प्राप्त होगये और होते रहेंगे, सेवा प्रेम सहित अपूर्व शक्ति रखती है.

ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता पण्डितों करके नियत किया हुआ पाणि-ग्रहण का समय गोधूलि के पश्चात् निकट आगया, चारों तरफ तैयारियां होने लगीं, बाजे बजने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगीं, रणबांकुरे घोड़ों पर सवार होगये, बाल वृद्ध हाथियों के अम्वारियों में बैठ गये, संग्रामी सिपाही खड़े होगये, तोपें और बंदूकें कड़क उठीं, चन्द्रहासों की चमक चमचमा उठी, जिस घड़ी रामचन्द्र अपने श्यामकर्ण घोड़े पर सवार हुये, और नग्न खड्ग को हस्त में ग्रहण किया, चारों तरफ़ एकाएक प्रकाश होगया, मानो घनघमण्ड में विद्युत चमक उठी उनका मुख लटकती हुई मणियों की लड़ियों में से ऐसा सुन्दर दिखाई देता था जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा नूतन वृक्षों के पत्तियों में से प्रिय दिखाई देता है, उनका घोड़ा मारे आनन्द के ऐसा नाच रहा था कि उसकी टाप धरती पर नहीं टिकती है, वह उड़ा उड़ा इधर उधर फिरता है, और गर्व में ऐसा भरा है कि मानो इसी काल आकाश में पहुँच कर सूर्य भगवान् के रथ के घोड़ों का सामना करना चाहता है. पर लाचार है क्योंकि वे घोड़े सहित रथ के किसी गुप्त स्थान में मारे डरके छिप गये हैं, रामचन्द्र के तीनों भ्राता भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न अपने अपने श्यामकर्ण घोड़ों पर सवार होकर और तलवारों को करकमल में ग्रहण कर उनके दहिने बायें और पीछे खड़े हुये ऐसे सुहावने लगते हैं कि मानो ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि के उत्पत्ति के प्रथम परब्रह्म परमात्मा के इर्द गिर्द उनकी आज्ञा लेने के निमित्त खड़े हैं, ऐसे दृश्य को देखकर जनकपुर के लोग उन चारों दिव्य मूर्तियों को अपने हृदयाकाश में रखकर मग्न हो गये, जब बरात आगे को बढ़ी वेदध्वनि होने लगी, ब्राह्मणों का आशीर्वाद गूंज उठा, एक तरफ़ वंशी की स्वरीली तान तनी हुई आकाश तक चली जा

रही हैं, दूसरे तरफ़ नक़्क़ारा, दुतारा, सितार, मोहन करनेवाले शब्दों का तार बांध दिया है, आगे नर्त्तकियों की भीनी भीनी शब्दें ऐसी हो रही हैं कि मानो भँवर पुष्पों पर गूंज रहे हैं; इस काल की मनुष्यकृत अनिर्विघ्न सामग्री को देखकर देवगणों से न रहा गया, ऊपर सबके सब विमानों पर अपनी अपनी अर्धाङ्गियों को नवीन नवीन वस्त्राभूषण से आभूषित किये हुये हर्षानन्द के बढ़ानेवाले बाजों को बजाते हुये निकल पड़े; और जनकनगरी के ऊपर चारों तरफ़ छा गये; नीचे से मालूम होता था कि अनेक प्रकार के बहुरंगी पक्षी अपने सुरीले शब्दों को करते हुये फिर रहे हैं, पर जब बरात राजा जनक के द्वार पर पहुँची सबके सब बहुत नीचे उतर आये और फिर नारद का बीन, गन्धर्वों का ढोल, शिवका डमरू, इन्द्र का मृदंग, स्वामिकार्त्तिक का नारसिंहा, ब्रह्मादिकों का शङ्ख ऐसे ज़ोर के साथ बजे कि चारों दिशा शब्दों से भर गईं, आज आकाश को बड़ा घमंड है क्योंकि वह अपने स्वामी राम को अपने में रखे हुये बड़ा आनन्दित हो रहा है और इसीलिये अपने सुकृत प्रजा ( देवगण ) को लिये हुये सेवा निमित्त नीचे झुक आया है और सुवर्ण रजतमय बूंटेदार अँगरखा ( सितारों ) को धारण किये हुये अपने दहिने नेत्र ( सूर्य ) और बायें नेत्र ( चन्द्रमा ) से अपने स्वामी का उत्सव देख रहा है.

जब बरात राजा जनक के द्वार पर पहुँची वहां खड़ी हुई हेमाङ्गी स्त्रियों के मुख दोनों काली अलकों के मध्य में से ऐसे ऐसे दिखाई पड़े कि मानो प्रातःकाल के अनेक सूर्य दो दो काली पहाड़ियों के बीच में से निकल आये हैं, और अपने इष्ट अवधपुरवासियों के मुखकमल को खिला दिये हैं, इधर से फेंके हुये पीले चावल और इधर से फेंके हुये शुद्ध पुष्प शरीरों

पर पड़तेही ऐसी आकर्षण शक्ति को उनमें पैदा करते थे कि मानो सूर्य की किरणें फूलरस को अपने में खींचे लेती हैं, इस पुष्पा-क्षत की झकोरा झकोरी एक घंटे के लगभग रही, फिर श्रावण की झड़ी बंद होगई, आकाश साफ होगया बाजे गाजे बंद हो गये, रामचन्द्र ने जानकी का पाणिग्रहण सूर्य चन्द्र और अग्नि को साक्षी देकर किया, भूसुरों ने आशीर्वाद दिया देवताओं ने पुष्पवृष्टि की, और इसी आनन्द में राजा जनक ने अपनी दूसरी कन्या माण्डवी भरत को, श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्न को और उर्मिला लक्ष्मण को प्रदान किया, आज राजा जनक के गृहविषे विवाह-यज्ञवेदी चार लाल अमूल्य कमनीय मोतियों से संयुक्त होकर ललित होरही है, और राजा दशरथ ऐसे दोदो लाल को दहिने बायें लिये हुये और बीच में आप खड़े हुये जनक पुरवासियों को ऐसा सुख दे रहे हैं कि मानो सूर्य देव ऊपर से उतर कर अपने पुत्र पुत्री को लिये हुये सामने के सरोवर के कमलों को आनन्द से विकसा रहे हैं, यह दृश्य दो घंटे तक रहा, फिर बरात लौटी और सब अपने अपने स्थान को सिधारे, ऊपर देवगण भी पुष्पवृष्टि करके और दुन्दुभी देकरके अपने घर को गये, निद्रादेवी ने जो माया की प्रथम कन्या है नाट्यशाला में आन कर सबको पराजय करके अपने आनन्द के कारागार में डाल दिया, और स्वतः पहरे पर खड़ी होगई फिर किस की शक्ति है जो चीं तो करे, हे मित्रो! किसी का समय एकसा नहीं रहता है अदल बदल हुआ करता है, जो आज आता है वह कल जाता भी है, निद्रा महारानी ने अपने राजकाज को समेटा, तारेगण अपने राजा राकेश के सहित गुप्त होगये, सूर्यदेव ने अपना सिक्का जमा दिया, अँधियारी भाग गई, प्रकाश हो आया, लोगों ने अपना शेष कार्य करना आरम्भ कर दिया, विवाह का

शिष्टाचार होने लगा, ऐसा ही एक पक्षतक बना रहा जनकपुर-वासियों को आनन्द मिलता रहा, सबका अन्त होता है, गुरु वशिष्ठ महाराज के हृदय में फुरना हुई कि अब अवध को चलना चाहिये, शतानन्दजी से अपनी इच्छा प्रकट की, बिदाई का दिन नियत हुआ, यह खबर नगर भर में फैलगई, सबके दिलोंमें बाणवत् प्रवेश करगई, सब अकुला उठे, एक दूसरे से कहने लगे क्या हमारा और राम का वियोग होगा, क्या राजकन्या जानकी हमको छोड़कर चली जायँगी, नहीं नहीं वह तो हमारे दुःखों को कभी नहीं देख सकी हैं, दुःखियों के दुःख को वह सदा दूर करती रही हैं, हे परमात्मन्! ऐसा करो कि राम यहीं रह जायँ, ससुरार सुखकी सार होती है, हम राम जानकी को देखकर और उनके अलौकिक चरित्रों को सुनकर बड़े हर्षित होते रहेंगे, राम हमारे प्राण हैं, राम हमारे नेत्र हैं, जब यह चले जायँगे तो फिर हम कैसे जीवेंगे, और कैसे देखेंगे.

हे प्रियमित्रो! यह संसार असार बड़े आश्चर्य की जगह है, इसमें सब कुछ है, और कुछ भी नहीं है, यह देखनेमात्र है, पकड़ने में कुछ नहीं आता है, इधर आया नहीं कि उधर गया नहीं, पलक भरमें उलथा पुलथा होजाता है, एक दिन पहिले जनकपुर में क्या आनन्द चारों तरफ होरहा था, अब क्या दुःख वियोग वृत्ति ने फैला दिया है रनिवास में जब बिदाई होने की खबर पहुँची वहां भी उदासी छागई, व्याकुलता ने आन घेरा, यह अमीर गरीब किसी को नहीं छोड़ती है, एक तरफ तो लोग दिल लगा कर सामान बिदाई कर रहे हैं, दूसरे तरफ से वियोगवृत्ति करके अश्रुपात होते जाते हैं, जनक महाराज के हृदय को भी वियोगवृत्ति ने कँपा दिया, उनकी वैराग्यवृत्ति थोड़ी देर के लिये भाग निकली, और वह लौकिकपुरुषों की तरह शोकसंयुक्त

होगये, यह जनकपुरी दो चार दिन पहिले एक पुष्पवाटिका होरही थी, इसके वासी कलीरूप होते हुये रामको भ्राता सहित और जानकी को बहिनों सहित मुदित देख कर खिल उठे थे, आज वेही सब इन्हीं के वियोग का अनुभव करके कुम्हलाये हुये दीखते हैं, जहां हरियाली थी वहां अब शुष्कता आगई, जहां पहिले पुष्प खिले थे वहां अब कांटे जम गये, ऐसे ही संसार-चक्र अहर्निश चला करता है, इसमें कोई वस्तु एकरस नहीं रहती है, और इसका ऐसा होना ही इसकी अद्भुत सुन्दरता है, प्रस्थान का दिन भी आन पहुँचा, लखों सुन्दर नौजवान सजे सजाये घोड़े सुवर्णमय अम्बारियों से कसे हुये सहस्रों हाथी, जरबफ्त के झूलों से ढकी हुई अनगिनतिन नालकी पालकी, मणिजटित सुवर्ण चांदी के सहस्रों बरतन और आभूषण, पकवान और मेवा से भरी हुई सहस्रों गाड़ियां, हजारों सुन्दर मनोहर इन्द्रलोकी अप्सरों को मात करनेहारी बांदियां राजा दशरथ की सेवा में अर्पण की गईं, जिनको देखकर वे अति प्रसन्न हुये, बाहर का तो यह हाल था अन्दर का हाल सुनिये।

जिस समय रामचन्द्र और जानकी और उनके साथ ही साथ भरतादिक और उनकी पत्नियों ने उनके पीछे पीछे चलकर रानियों के चरण को छुआ है, और उन्हों ने दौड़कर उनको छाती से लगाकर उनका मत्था सूंघा है यह सोचती हुई कि अब हमारी इनकी जुदाई होती है तो अश्रुपात दोनों तरफ से ऐसा बहता हुआ दिखाई देता है जैसे वर्षाऋतु में दूर पर धौरे बादलों में से पानी का तार लगातार पृथ्वी से छुवा हुआ दिखाई देता है, भेद केवल इतना है कि वहां एक ही तरफ़ दिखाई देता है यहां दोनों तरफ़, सीताजी की माताजी सुनयना ने शुभ औसर जान कर हृदय को दृढ़ किया, धैर्य को धारण किया और

आशीर्वाद देती हुई बोलती भई कि हे मेरी प्राणप्यारी पुत्री सीते! यावत् सूर्य, चन्द्र, तारे स्थित रहें तावत् तू सौभाग्यवती बनी रहे, हे पुत्रि! तू सदा अपने पति राम को अपनी सेवा से शीतल करती रहना, तू धरती माता के गर्भ से उत्पन्न हुई है, सहनशीलता तेरा स्वाभाविक धर्म है, तू अपने धर्म से कभी च्युत न होना, स्त्रियों के मध्य पातिव्रत धर्म के धारण करने में तेरा प्रथम रेख होगा, तू सदा अपने पति को प्यारी रहेगी, फिर रामचन्द्र से कहती हैं कि हे राम! मैंने शतानन्द महाराज से सुना है कि तुम ईश्वर हो, हम अबलाओं को आनन्द देने के लिये तुमने मनुष्य का अवतार लिया है, तुम सबके हृदयस्थ गुप्त बात को जानते हो, यह मेरी प्राणों की आधार कन्या दैवयोग करके तुम्हारी पत्नी हुई है, इसको अपनी दासी जानकर इसके ऊपर सदा कृपा करते रहना, यह दासीधर्म से कभी अधर्मी न बनेगी, इसके अपराध को हे पुत्र! क्षमा करना, इतना कहकर मोहवश होकर रोने लगीं, गला रूँध गया, बोल बंद होगया, राम धैर्य धरकर कहने लगे, हे मातः! मैं पिता की शपथ खाकर कहता हूं कि आपकी सीता जो मेरी अर्धांगी हैं, मेरे अंग से कभी अलग न होवेंगी, मेरा इनका साथ वैसे ही रहेगा जैसे तिल तेल का, घृत पय का होता है, आपके राम का यह हाथ इनका सदा रक्षक रहेगा, आपके राम की यह पीठ आवश्यकता के समय इनके लिये विमान बनेगी, आपके राम का नेत्र चकोर होकर आपकी कन्या के शशिमुख को देखा करेगा, और उनके आराम के लिये यह पैर दौड़ा करेगा, हे मातः! विन्ध्याचल पर्वत टुकड़े टुकड़े होकर गिर जाय, समुद्र सूख जाय, सूर्य पूर्व से पश्चिम में उदय होआवे, यह सब संभव है, पर आपका राम अपनी प्रतिज्ञा से हट जाय, यह असंभव

है; मैंने इनको सूर्य, चन्द्र और अग्नि को साक्षी देकर अपने शरण लिया है, क्या मैं इनको कभी अशरण करदूंगा, हे मातः! हमारे वंश का जनक यह प्रत्यक्ष सूर्य भगवान् हैं, यह अपने सत्यव्रत वंशवालों की कीर्त्ति को देख देख करके सदा मुदित होते हुये प्रकाशवान रहते हैं, इनके सामने हे देवि! मैं फिर प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि आप का राम कभी दिये हुये वचन को न त्यागेगा और उसके भ्राता भी कभी न त्यागेंगे, आपकी चारों कन्यायें अपने पति के सामने वैसे ही प्रफुल्लित रहेंगी जैसे कमल सूर्य को देखकर खिला रहता है, और उनके पतियों का हृदय उनके चन्द्रमुख को देखकर वैसे ही आनन्द से विकसा रहेगा जैसे कुमुदिनी शशि को देखकर खिली रहती है, ऐसी दृढ़ता सहित रामचन्द्र के वाक्य ने सब रानियों को हँसा दिया, उनके हृदय को आनन्द से भर दिया, ऐसा अच्छा अवसर पाकर राम ने विदा होने की आज्ञा मांगी, और रानियों ने प्रसन्नता के साथ दी, जानकी का हृदय पति के एक एक वाक्य पर आनन्द के मारे उछलने लगा और मनही मन में परमात्मा को ऐसे श्रेष्ठ पति पाने के बदले में धन्यवाद देतीं, जानकी जनक को वरण्डा में खड़े देख दौड़कर उनके चरण पर गिर पड़ीं, राजा ने उनको उठाकर छाती से लगा लिया, और उनके शिर को सूंघते ही उनके हृदय में यह वृत्ति उठ आई कि आज मेरी प्यारी लड़की से मेरा वियोग है, यह वृत्ति होते ही नेत्रों से अश्रु वह निकला, बोल बन्द होगया, जहां खड़े हैं वहीं खड़े हैं, रामके मुखारविंद पर टकटकी लगी है, वाह रे माया मोह तेरी प्रबलता सबको दबा लेती है, जिस जनक को जगत् स्वप्नवत् प्रतीत होता था, जो शोक से अशोक सदा बने रहते थे, वेही आज अज्ञवत् ऐसे मोह को प्राप्त हैं, और प्रकवत खड़े हैं, ऐसी उनकी दशा देख

कर लोग घबड़ा गये, वशिष्ठ महाराज आनकर कहने लगे कि हे राजन् ! राम जानकी आप के सामने विदा होने के लिये खड़े हैं, उनको देरी होरही है, यह शब्द सुनकर वह राम के चरण पर गिर पड़े, यह कहते हुये कि जैसा मैंने सुना था वैसा ही मैंने आपको समाधि में पाया इस मेरी प्राणप्यारी कन्या पर कृपादृष्टि बनाये रखना और फिर आशीर्वाद देकर विदा किया.

जब रामादिक राजभवन से अपनी बारांगियों के साथ निकल कर बाहर मैदान में लोगों के दर्शनार्थ खड़े होगये तो उस समय का दृश्य अति शोकजनक भासने लगा, वियोग की अग्नि ऐसी ज्वालामुखी अग्नि की तरह भड़क उठी कि उसकी उष्णता ने लोगों के हृदयरूपी पर्वत को ऐसे हलचल में डाल दिया कि उसमें से असंख्य नदियां नेत्ररूपी स्रोताओं के द्वारा निकल कर चुपचाप वह चलीं, और नाभिरूपी समुद्र में जा मिलीं, स्त्री पुरुष, लड़की लड़के, पशु पक्षी, फल फूल, रूख रूखरी, सभी मौन होकर अश्रुपात होरहे हैं, चलते समय एकाएक सब मनुष्य बोल उठे "हे राम ! हमको भूल न जाना, फिर आना, और दर्शन देना, आप हमारे मनको अपनी मोहनी सूरत में बांधे लिये जाते हैं, हमारा प्राण तुम्हारे साथ निकला चला जारहा है, अब बताओ हमारा जीवन बिना तुम्हारे यहां कैसे होसक्ता है" राम ने अश्रु को रोक कर हाथ उठाकर कहा हे मेरे प्यारे प्रेमियो ! हे निष्कपट भक्तो ! मैं प्रण करके कहता हूं कि तुम सब मेरे हृदय में सदा वास करते रहोगे, और मैं सहित तुम्हारी कन्या सीता के तुम्हारे हृदय में, जब तुम याद करोगे तभी तुम्हारे सामने खड़ा होजाऊंगा, तुम सब मेरे ऊपर अपना सच्चा प्रेम बनाये रखना, इसके पीछे जब बरात लौट चली, जनकपुरी के लोग उसके पीछे होलिये, फिरने की इच्छा नहीं करते हैं, सबकी

मनोगत कामना यही होरही है कि यदि राम को छाती से एक बार लगा पावें तो हमारा मन संतुष्ट होजावे, राम उनके अभीष्ट अभिलाषा को जान गये, अनेक राम होकर सबसे भेंटे, फिर सब शान्तचित्त होकर लौटे, पैर तो घरके तरफ बढ़ता है, पर मन राम के साथ साथ चला जाता है.

बरात अब उसी राह से फिरी जिस राहसे गई थी, हाथियों के ऊपर मणिजटित अम्बारियों के अन्दर राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न अपनी पत्नियों के साथ ऐसे सुन्दर दीखते हैं कि मानो आज इन्द्र शची को संग लिये हुये ऐरावत हाथी के ऊपर अम्बारी में बैठे हुये विजय करके इन्द्रलोक को लौटे चले जारहे हैं, जब गांव के निकट बरात पहुँचती है तो घरों में से किशोरी हेमांगमुखी युवतियां सूर्य की कान्ति को लजाती हुई करतल में मंगलदायक वस्तु दधि, दूर्वा, रोरी, अक्षत, पुष्पादि चाँदी की थारियों में लिये सड़क पर खड़ी होजाती हैं, और उनको देखते ही हाथी बैठाल दिये जाते हैं, और वे नारियां हँसती हुई राजकुमारों और राजकुमारियों की आरती करती हैं और जब आनन्द में मोतियों से भरी हुई थालियों को लिये हुए आशीर्वाद देकर मनोहर स्वरों में गाती हुई पीछे को फिरती हैं, तब हाथी उठकर आगे को बढ़ते हैं, यही हाल हर एक गांव के सामने होता है, दुलहा दुलहिन के देखने को दूर के गांवों में से स्त्री पुरुष लड़की लड़के ऐसे दौड़े चले आते हैं जैसे समुद्र चन्द्रमा के देखने के लिये ऊपर को दौड़ता है, और उनको देख कर ऐसे हर्षित होते हैं जैसे लोभी धन पाकर, अन्धा नेत्र पाकर, गूंगा वाणी पाकर, और कामी नारी पाकर मुदित होजाते हैं, ऐसे दृश्य को देख कर जानकी प्रसन्नचित्त के साथ राम से प्रश्न करती हैं कि हे प्राणनाथ! यह सब प्रजा हम को आप को

एकत्र देखकर ऐसे आनन्द को क्यों प्राप्त हैं? उसपर राम कहते हैं, हे सुलोचने! प्रजा राजा को अपना कल्याणकारक, रक्षक, पालक, और पोषक जानती है, और यह उनका जानना ठीक भी है, क्योंकि राजा में चारों वर्णों के गुण विशेष अंश के साथ रहते हैं, ब्राह्मण अंश करके राजा प्रजा के अध्यात्मिक उन्नति का वर्धक होता है, क्षत्रिय अंश करके उनका रक्षक बनता है, वैश्य अंश करके पालक होता है, और शूद्र अंश करके पोषक होता है, इन दोनों का सम्बन्ध वैसे ही है जैसे किरण का सूर्य के साथ, सूत का कपड़े के साथ, शब्द का आकाश के साथ, स्पर्श का वायु के साथ, रूप का अग्नि के साथ, शीतलता का जलके साथ, और गंध का पृथ्वी के साथ होता है, यदि प्रजा नहीं तो राजा का कहीं पता नहीं, प्रजा अधिष्ठान है, राजा आधेय है, जो कुछ विभूति राजा के गृह विषे होती है वह सब प्रजा की है, प्रजा उत्पन्न करती है, राजा भोगता है, प्रजा माता की तरह दुःख उठाती है, राजा पुत्र की तरह सुख भोगता है, पर उस माता को तब आनन्द मिलता है जब पुत्र अपने को सब प्रकारसे भाग्यवान् बनाकर उसकी सेवा करता है, हे जानकी! हम को तुमको सुधर्मी, सुकर्मी पुत्रवधू समझकर प्रजा अति हर्षित होरही है, अब हम लोग भी वही कर्म करके दिखावें जिससे वे सदा हर्षित रहें, उनके अन्तःकरण में खेद का अंकुर न जमने देवें, उनके धन धान्य की रक्षा करते रहें ताकि वे पेट भर खावें, और नींद भर सोवें, किसी प्रकार की चिन्ता से चिन्तित न रहें, यह सुनकर जानकी जी का शरीर रोमाञ्चित हो आया, गद्गद वाणी से बोल उठीं, हे अतुल वीर, आर्यपुत्र! मेरी बराबर कौन संसार में सौभाग्यवती स्त्री है, जिसका पति ऐसा धर्मज्ञ है, आपकी मैं अनुचरी हूं, आपके हर काम में सहायक

रहूंगी, आपके उत्साह को बढ़ाती रहूंगी, आपको धार्मिक कार्यों विषे लगाती रहूंगी, और अपने धर्म से कभी च्युत न होंगी, मैं संसार भर की स्त्रियों को दिखाऊंगी कि उनका धर्म पति के साथ, पति के माता पिता के साथ, और पति के सम्बन्धियों के साथ क्या है, हे प्रभो! यह मेरा शरीर लतारूप सुन्दर प्रिय हरा भरा अभीतक है जबतक आपके प्रेमजल से यह सिंचित होरहा है, यह मेरा मुख कमलवत् इस भवसागर में अभीतक खिला है, जबतक आपका सूर्यमुखी मुख इसके सम्मुख है, आपके प्रेम का अमृतरूपी प्याला पी पी कर मैं दुःखियों को सुखी बनाती रहूंगी, और हम लोगों के पुरुषार्थ के फलको हमारी प्राणप्यारी प्रजा चखकर सन्तुष्ट बनी रहेगी, इस प्रकार के परस्पर की बात-चीत की समाप्ति न हुई थी कि इतने में अनेक तुरही बज उठीं जो सूचित करती थीं कि अवधपुरी निकट आगई है, द्विजाति पुरवासी स्वच्छ वस्त्राभूषण धारण किये हुये, शकुन की वस्तु को लिये हुये, सजे सजाये गजों के ऊपर सवार होकर चल पड़े, और शूद्रजाति के सुभागी सीधे साधे स्त्री पुरुष पैदल राम जानकी के दर्शनार्थ ऐसे उमंग के साथ चले आते हैं जैसे नदियां पर्वत से पतन होती हुई अपने स्वामी समुद्र से मिलने के लिये जोर के साथ जाती हैं, राम जानकी को चन्द्रमा की सूरत में हाथी पर बैठे देखकर वे अपने दोनों हाथों को उठाकर ऐसे ऊपर को उछलते हैं जैसे समुद्र की लहरें गगनमण्डल विषे राकेश को देखकर ऊपर को फलांग मारने लगते हैं, दूर से देखिये तो मालूम होता है कि अयोध्या इस समय एक सरोवर सा बना हुआ जिस में असंख्य कमल अनेक रंग के स्त्री पुरुष लड़की लड़कों की सूरत में खिले हैं, अपने सूर्यमुख रामचन्द्र और चन्द्रमुखी जानकी के देखने के लिये स्थावर से जंगम

होकर बड़े जोरों के साथ चला आता है और उनके साथही साथ फिर लौटा जाता है.

जब बरात नगर के अन्दर पहुँची तोपों की सलामियां होने लगीं, बन्दूकें छूटने लगीं, अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, ब्राह्मण वेदध्वनि और ऋषि शंखध्वनि करने लगे, आकाश में देवता लोग दुन्दुभी देकर पुष्पों की वर्षा करने लगे, और सड़कों के दोनों किनारों के मकानों की अटारियों परसे मयंकमुखी नारियों की फूलों की झकोरों ने भादों महीने के वर्षा की झकोरों की तरह राजकुमारों और राजकुमारियों के सारे शरीरों को ढाप दिया, केवल उनका मुख खाली बचकर प्रातःकाल के सूर्यवत् सुदर्शनीय दिखाई देता था, जब कुँवर और कुँवरि राजद्वार पर पहुँचे हाथियों पर से उतर पड़े, और रानियों के चरण को छूकर उनके सम्मुख खड़े होगये, उस समय जो शिष्टाचार हुआ है, और उसके करने में जो आनन्द सबको मिला है, और जिसको गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने रामायण में भली प्रकार वर्णन किया है उसी को मैं यहां लिखता हूं.

करहिं आरती बारहिंबारा । प्रेम प्रमोद कहै को पारा ॥
भूषण मणि पट नाना जाती । करहिं निछावरि अगणित भांती ॥
बधुन समेत देखि सुत चारी । परमानन्द मगन महतारी ॥
पुनि पुनि सीय राम छवि देखी । मुदित सफल जगजीवन लेखी ॥
सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही । गान करैं निज सुकृत सराही ॥
बरषहिं सुमन क्षणहिं क्षण देवा । नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा ॥
देखि मनोहर चारिउ जोड़ी । शारद उपमा सकल ढंढोरी ॥
देत न बनहि निपट लघु लागी । इकटक रही रूप अनुरागी ॥
चारि सिंहासन सहज सुहाये । जनु मनोज निज हाथ बनाये ॥
तिन पर कुँवर कुँवरि बैठारे । सादर पांय पुनीत पखारे ॥

धूप दीप नैवेद्य वेद विधि। पूजे वर दुलहिन मंगलनिधि॥
बारहिं बार आरती करहीं। व्यजन चारु चामर शिर ढुरहीं॥
वस्तु अनेक निछावर होहीं। भरी प्रमोद मातु सब सोहीं॥
पावा परम तत्त्व जनु योगी। अमृत लहि जनु संतत रोगी॥
जन्म रंक जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभ सुहावा॥
मूक बदन जनु शारद छाई। मानहु समर शूर जय पाई॥
मंगल गान करहिं वर भामिनि। भइ सुखमूल मनोहर यामिनि॥
अँचै पान सब काहुन पाए। स्रग सुगंध भूषित छवि छाए॥
रामहिं देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले शिरनाई॥
प्रेम प्रमोद विनोद बढ़ाई। समय समाज मनोहरताई॥
कहि न सकहिं श्रुति शारद शेषू। वेद विरंचि महेश गणेशू॥
सो मैं कहौं कवन विधि वरणी। भूमि नाग शिर धरै कि धरणी॥
नृप सब भांति सबहिं सनमानी। कहि मृदु वचन बुलाई रानी॥
वधू लरकिनी परघर आई। राखेउ नयन पलक की नाई॥
नींदहु बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥
घर घर करहिं जागरण नारी। देहिं परस्पर मंगल गारी॥
पुरी विराजत राजत रजनी। रानी कहहिं विलोकहु सजनी॥
सुंदर वधुन सासु लै सोई। फणिपतिजनु शिरमणि उर गोई॥
प्रात पुनीतकाल प्रभु जागे। अरुण चूड़ वर बोलन लागे॥
वंदी मागध गुणगण गाए। पुरजन द्वार जुहारन आए॥
वंदि विप्र सुर गुरु पितु माता। पाइ अशीश मुदित सब भ्राता॥
जननी सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे॥
भूप विलोकि लिये उरलाई। बैठे हरषि रजायसु पाई॥
देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचनलाभ अवधि अनुमानी॥
पुनि वशिष्ठ मुनि कौशिकआए। सुभग आसनन मुनि बैठाए॥
सुतन समेत पूजि पद लागे। निरखि राम दोउ मन अनुरागे॥

कहहिं वशिष्ठ धर्म इतिहासा। सुनहिं महीप सहित रनिवासा॥
मुनिमन अगम गाधिसुत वरणी। मुदित वशिष्ठ विपुलविधि करणी॥
बोले वामदेव सब साँची। कीरतिकलित लोक तिहुँ माँची॥
सुनि आनंद भए सब काहू। राम लपण उर अधिक उछाहू॥

रामादिकों के विवाह का उत्साह कई महीनों तक अवध में रहा, पर संसारचक्र के अनुसार दिन की छिन्नता के साथ उसकी खिन्नता भी होने लगी, वह भी दिन आन पहुँचा जिसने सब उमंगों को शान्त कर दिया, राजा, प्रजा, नौकर, चाकर, ऋषि, मुनि अपने अपने कर्मों में लग गये, राजकुमार भी अपने नियत किये हुये कार्य को करने लगे, सियराम बड़े प्रातःकाल उठकर शौच स्नान कर्म करके साथ साथ ईश्वराराधन में लग जाते हैं, और वैदिक रीति से जप तप ध्यान हवनादि करके बाहर आनकर यथोचित दान भूसुरों व याचकों को देकर अपने अपने शृंगार के कमरों में जाकर वस्त्राभूषण से आभूषित होकर, सीता अपनी सासुओं के पास चरण स्पर्शार्थ जाती हैं, और रामचन्द्र अपने पिता व गुरु के पास साष्टांग दण्डप्रणाम निमित्त गमन करते हैं, और फिर दोनों अपने अपने वन्दनादि कर्म को करके बाहर के आगमन में खड़े होकर सब ब्राह्मण, ऋषि, मुनि, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ को नम्रतापूर्वक दण्डप्रणाम करके उनके आशीर्वादों के शब्दों के गूँज में रथादिकों में सवार होकर और अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण धनादि लेकर घूमने के लिये चल पड़ते हैं, और इच्छानुसार किसी दिशा में जाकर गांवों में प्रवेश करते हैं, और सवारी पर से उतर कर राम पुरुषों से मिलते हैं, और जानकी स्त्रियों से मिलती हैं, और उनसे कुशल क्षेम को पूंछ पांछ कर और उनकी आवश्यकता को दूर कर आगे को बढ़ते हैं, और मध्याह्न के लगभग लौट आते हैं, नियुक्त दिनों में यज्ञशालाओं, धर्मशालाओं,

अनाथशालाओं और पाठशालाओं का देख भाल करते हैं, और उनके ऋत्विज, अध्यक्ष, और अध्यापकों के कार्य से प्रसन्न होकर उनको परितोषित करते हैं, इसी प्रकार भरतादिक भी करते हैं, थोड़े ही काल में कृषिविद्या, वाणिज्यविद्या, शिल्पविद्या, वैद्यकविद्या की इतनी उन्नति हुई कि सारा संसार सुखी होगया, जिधर देखो उधर आनन्द होरहा है, और सियराम का प्रेम चारों ओर छाया है, उनका प्यारा नाम घरों में गूंज रहा है, उनकी मूर्ति लोगों के हृदय में बस गई है, ब्राह्मण, ऋषि, मुनिजन ईश्वराराधन करते हैं तो सियराम की सूरत ध्यान विषे पाते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, धनेश, गणेश का कहीं पता नहीं लगता है, कहां गये क्या होगये कोई कह नहीं सक्ता है, उनकी सूरत किसी के ध्यान में उपस्थित होती ही नहीं, जो लौकिक स्त्री पुरुष हैं वे कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करते जाते हैं और सियराम को मनमें भजते जाते हैं, इनके प्रेमका विस्तार कहा नहीं जाता है, जितने थलचर, जलचर और नभचर जीव जन्तु हैं सबके हृदय में सियराम बस रहे हैं, जब कभी वृक्षका वकल गिरजाता है तो सियराम सियराम उसके अन्दर लिखा हुआ दिखाई देता है, जिधर सियराम जाते हैं उधर जल आनन्द के मारे उछलने लगता है, पशु पक्षी कुलेल करने लगते हैं, वृक्षादिक ऐसे प्रसन्न दीखने लगते हैं कि मानो हँसने ही पर हैं, सियराम की छवि, सभ्यता, शील देश देशान्तरों में फैला है, और अनेक दिशाओं से लोग सियराम के दर्शनार्थ चले आते हैं, और उनको देख तृप्त होकर उनकी मूर्ति का ध्यान करते हुये लौट जाते हैं, मनुष्य की कौन कहै, खग, मृग भी दूर दूर देशों से चले आते हैं, और जब दर्शन उनको मिल जाता है तो फिर सियराम सियराम कहते हुये चले जाते हैं, अरण्य में जिधर देखिये उधर आक,

ढाक, और कैर भी सियराम सियराम कह रहे हैं, मेरे लिये यही शुभ है, कि अपने सियराम को इस अवधपुरी में आनन्द करते हुये छोड़कर मैं भी कुछ काल के लिये गंगा के किनारे पर जाकर सियराम सियराम कहूँ, जिसके वल से वली होकर अपने शत्रु काम क्रोध को दूर कर जीवन्मुक्त का आनन्द भोगूं,

ओंहरिः ओंहरिः ओंहरिः

ओंशान्तिः ओंशान्तिः ओंशान्तिः

यह पुस्तक इन पतों पर मिलेगी:—

लाला अनन्दीलाल बुकसेलर

उज्जैन मालवा.

लाला रामकुमारलाल दफ़्तर पोस्टमास्टर जनरल

लश्कर गवालियार स्टेट.